पंथ प्रेम को अटपटो

प्रवचन-क्रम

1. ब्रह्मचर्य और समाधि...2
2. मनुष्य विक्षिप्त क्यों है?...14
3. होश से क्रांति...32
4. स्वयं का साक्षात...47
5. अहंकार का भ्रम...63

पंथ प्रेम को अटपटो
पहला प्रवचन

ब्रह्मचर्य और समाधि

मेरे प्रिय आत्मन्!
सभी महत्वपूर्ण चीजों के संबंध में भ्रांतियां हो जाती हैं। जो भी व्यर्थ है, उसके संबंध में कभी भ्रांति नहीं होती। जो बात जितनी सार्थक है, उतनी भ्रांति पैदा होती है। उसका कारण यह है कि जो जितनी व्यर्थ है, हमारी सबकी समझ के भीतर होती है। और जो जितनी सार्थक है, हमारी समझ के पार पड़ जाती है, बात आगे निकल जाती है। तो जमीन के संबंध में कोई बात हो, तो भ्रांति नहीं होगी; आकाश के संबंध में बात हुई, तो भ्रांति शुरू हो जाती है। तो जितनी ऊंची बात है, उतनी मिसअंडरस्टैंडिंग होनी अनिर्वाय है। क्योंकि हम तो वहीं से पकड़ सकते हैं, जहां हम हैं। और हम वही समझ सकते हैं, जो हम समझ सकते हैं। जो हमारी समझ के पार है, उसको भी समझने की कोशिश करते हैं, इसी से भ्रांति पैदा होती है।
अब जैसे सेक्स तो मनुष्य की समझ के भीतर है; ब्रह्मचर्य उसकी समझ के बिल्कुल बाहर है। तो वह जो भी ब्रम्हचर्य का अर्थ लेगा, वह किसी न किसी तरह से सेक्स सेंटर्ड होगा। जो भी अर्थ लेगा, वह यौन केंद्रित होगा और वहीं से भ्रांति शुरू हो जाएगी। ब्रह्मचर्य का कोई संबंध यौन से नहीं है। कोई भी संबंध। हां, ब्रह्मचर्य के परिणाम में जरूर यौन प्रभाव पड़ते हैं।
दो बातें समझ लेनी चाहिए। एक तो मनुष्य के मन में--मनुष्य के ही नहीं, समस्त प्राणियों के मन में, शायद प्राणियों के मन में ही नहीं, पौधे, वृक्षों, वनस्पति के मन में भी सुख का जो अनुभव है, वह यौन से बंधा हुआ है। और स्वभावतः, जिस चीज से सुख का अनुभव बंधा होगा, उसी से दुख का अनुभव भी बंधेगा। तो सर्वाधिक सुख की कल्पना और कामना भी यौन में केंद्रित है और सर्वाधिक दुख की भी। तो जब भी और किसी बड़े आनंद की बात की गयी है, तो हमारे पास जो तौलने का मापदंड है, वह यौन सुख है। हम उसीसे तौलते हैं। और यह भी हमारे ख्याल में आ गया कि जिन लोंगो को वह आनंद उपलब्ध होता है, उनके जीवन से यौन एकदम से विदा हो जाता है। हमारी जो तौल है परम सुख की, आनंद की, मोक्ष की, कुछ भी नाम देंत्तो हम यही सोच सकते हैं कि जैसे अनंत-अनंत संभोगों का सुख होगा उसमें। शास्त्र में ऐसी बात भी चलती है। अनंत संभोग का सुख इसमें है!
तो हम तौल भी सकते हैं। अगर हमसे कोई मोक्ष की, आनंद की और ब्रह्म की बात करे, तो हम तौलें कहा से? हमारे पास मेजरमेंट क्या है? हमने जो सुख जाना है, उसी से तौलते हैं। स्वभावतः वैसे ही जैसे कुएं का मेंढक, सागर के संबंध में भी बात करो, तो कुंए से ही तौलेगा। वह यह पूछेगा कि तुम्हारा सागर कितना बड़ा है? हमारे कुएं से दोगुना बड़ा, दस गुना बड़ा, पचास गुना बड़ा है? और उस मेंढक को हम कहें कि नहीं, तुम्हारा कुआं तो मेजरमेंट ही नहीं है सागर का, तो वह फिर उलटा विश्वास करेगा। वह कहेगा, ऐसी कोई चीज हो नहीं सकता। कितनी ही बड़ी हो, कुएं से नप जाएगी। क्योंकि बड़ी से बड़ी जो है उसकी दुनियां, वह कुएं में सीमित है। तो हमारे मन के सुख के जो भी छोटे-मोटे झरने का हमें अनुभव हुआ है, वह सेक्स से संबंधित है।
तो जब भी हमसे मोक्ष, ब्रह्म, आनंद इन सबकी बातें की जाती हैं, तो अगर
हम अपने मन को टटोलें, तो हम पायेंगे कि हमारे मन में वह जो यौन-सुख है, उसमें ही हम गुणा करते हैं कि और ज्यादा, और ज्यादा होगा; बहुत होगा, कई गुना होगा, अनंत गुना होगा, लेकिन होगा यह। पर यौन के संबंध में हमारे साथ दुख भी जुड़ा है। क्योंकि सब सुख की प्रतीति के बाद दुख की खाई अनिवार्य है। जैसे पहाड़ों के साथ खाइयां घिरी हैं, क्योंकि पहाड़ उठ नहीं सकता बिना खाई बनाये। वह उठेगा, तो पास में गड्ढा बनेगा। तो सब सुखों के साथ अनिवार्य दुख जड़े हैं, जो उनकी खाइयां हैं। सुख जब पीक बनती है, तो उसके साथ दुख की खाई बन जाती है। और चरम स्थिति में बहुत देर तक नहीं रहा जा सकता; जब आप लौटते हैं, तो खाई में गिर जाते हैं।

तो यौन के साथ सुख भी जुड़ा है, दुख भी जुड़ा है। इसलिए जब हमसे कोई परम आनंद की बात करता है, तो हम उसमें एक तरकीब लगाते हैं। यौन-सुख को अनंत गुना कर लेते हैं और यौन-दुख को बिल्कुल काट डालते हैं कि वहां बिल्कुल दुख है ही नहीं।
यह हमारी स्वाभाविक क्षमता की बात हो गयी। फिर हमने एक और अनुभव किया
है कि कोई बुद्ध हो, कि कोई महावीर हो, कोई कृष्ण हो, कोई क्राइस्ट हो, जो इस आनंद की बात करते हैं, उनके जीवन से यौन हम एकदम से तिरोहित हुआ देखते हैं। वह वहां नहीं है। तो एक दूसरी भी हमारे मन में कल्पना सहज जुड़ जाती है कि अगर यौन तिरोहित हो जाये, तो यह आनंद मिल सकता है। भ्रांति इससे पैदा होनी शुरू होती है। तो हम यौन को दबाने में, काटने में, मिटाने में लग जाते हैं। तो हमारे ब्रम्हचर्य की सारी भ्रांत स्थिति हैं; यौन-दमन, सेक्स-सप्रेशन उसका अर्थ हो गया है-कि दबाओ, मिटाओ, काटो, समाप्त कर डालो। क्योंकि हमने देखा यह है कि जिनके जीवन में वह आनंद घटित हुआ है, उनके जीवन में यौन नहीं था, उसका अभाव है। तो हम यौन का अभाव कर दें, तो हमारे जीवन में ब्रम्हचर्य आ जाये। यह गलत तर्क है। असल में अगर आनंद उतरे, तो यौन-सुख का अभाव हो जाता है। इसलिए नहीं कि यौन को काटना पड़ता है, बल्कि इसलिए कि इतना परम आनंद मिल जाता है कि कुएं की कौन फिक्र करे-जिसको सागर मिल गया हो। और मेंढक अगर सागर में आ गया हो और कुएं में लौटने से इनकार कर दे, तो कोई कुएं का त्याग थोड़े ही कर रहा है, सागर का त्याग नहीं कर पा रहा है, इसलिए कुएं में नहीं जाता।
इसको बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। मगर कुएं के मेंढक तो यही कहेंगे
कि कुएं का त्याग कर दिया। तो हम भी अगर कुएं का त्याग कर दें, तो हम भी सागर में पहुंच जायेंगे। सागर में पहुंचने से कुएं का त्याग हो सकता है, हो जाता है, क्योंकि कोई अर्थ ही नहीं है वहां लौटने का। लेकिन कुएं का त्याग करने से सागर नहीं मिलता। और कुएं का त्याग करके हो सकता है कुएं के पत्थर की गर्मी पर ही तड़पना पड़े और कहीं कुछ न हो। कुआं भी छूट जाये, सागर भी न मिले! क्योंकि कुएं के बाहर हो जाने का नाम ही सागर नहीं है। कुएं के बाहर हो जाने के बाद कुएं का पानी तो छूटेगा। इसलिए यौन का अर्थ तो हमारे मन में भोग है, और ब्रम्हचर्य का अर्थ हमारे मन में त्याग है, जो कि गलत बात है।
मेरे मन में ब्रम्हचर्य परम भोग है। और परम भोग जब आता है, इसलिए भोग
हट जाता है। वह मिस-अंडरस्टैंडिंग जिसको आप कह रहे हैं, गैर समझी, वह इसलिए पैदा हो गयी है कि वह बन गया है त्याग। कुआं तो छोड़कर मेंढक आ जाता है कुएं के बाहर, लेकिन वहां तपती दोपहरी है। तपश्चर्या होती है, तप होता है और कुएं के लिए प्राण तड़पते हैं, और रोआं-रोआं चिल्लाता है कि कुएं में वापस चलो। लेकिन इस आशा में, इस लोभ में कि जिनको भी सागर पाना है, उनको कुआं छोड़ना पड़ता है, वह इस दुख को भी झेलता है। तड़पता भी है कुएं के किनारे बैठकर, आंख बंद किये चिल्लाता भी रहता है, प्यास में भी मरता है, रोआं-रोआं मरता है, लेकिन इस आशा में है कि इसके छोड़ने से सागर मिलेगा, वह इस दुख को झेलता है।
हमारा जो ब्रम्हचर्य है, ब्रम्हचर्य जिसको हम समझ बैठे हैं, वह केवल यौन-दमन है। वह यौन के कुएं के बाहर जबर्दस्ती खड़े हो जाना है। और इसलिए जो व्यक्ति भी यौन-दमन में लग जायेंगे, उनका जीवन सिर्फ सूखता चला जाएगा सब दिशाओं से-रिक्त और खाली, और जड़। इसलिए आपके तथाकथित ब्रम्हचारियों ने दुनिया को कुछ कंट्रिब्यूट नहीं किया। उनका कंट्रिब्यूशन इतना ही है कि कुएं के बाहर वे तड़प रहे हैं और बाकी कुएं के मेंढक जो इतना भी नहीं कर सकते, तो हाथ जोड़ कर उनके चरण छूते हैं। इनके ये बाकी जो मेंढक हाथ जोड़ कर चरण छू रहे हैं, इनकी वजह से वे वापस कुएं में नहीं कुद पा रहे हैं। एक अटकाव खड़ा हो गया! आदर है, सम्मान है, संन्यास है, त्याग है, तप है, तपश्चर्या है। कुएं में भी कूद नहीं सकते, सागर कहीं दिखाई नहीं पड़ता है। उनकी बेचैनी की हम कल्पना नहीं कर सकते हैं।

जब संन्यासी मुझसे निकट से बातें करते हैं, तो उनकी बेचैनी बहुत अधिक होती है। बस, उनको एक ही चैन है कि आप उनको आदर देते हैं। जिस दिन यह चैन आपने खींच लिया, वे कुएं के भीतर दिखायी पड़ेंगे।
तो मेरी दृष्टि में ब्रम्हचर्य, कोई निगेटिव, कोई नकारात्मक बात नहीं
है कि सेक्स को छोड़ो, यौन को दबाओ, यह नहीं है। मेरे मन में तो ब्रम्हचर्य और बड़े आनंद की तलाश है। और उसके लिए कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं है। हां, उसके मिलने पर बहुत कुछ छुटता है। और मैं सदा इस तरह देख पाता हूं कि अगर आपको बड़ा धन मिल जाये तो छोटा धन छूट जाता है। जगह भी तो खाली करनी पड़ती है! हाथ में कंकड़-पत्थर भरे हुए चले जा रहे हैं और हीरों की खदान मिल गयी, हाथ भी तो चाहिए न! तो उस क्षण में यह पता भी न चलेगा कि कंकड़-पत्थर छूट गये। हाथ खुलेंगे और हीरे बंध जायेंगे। हीरे के बंधने भर का पता चलेगा कि हाथ हीरे पर बंध गये हैं और कंकड़-पत्थर कब छोड़े, इसका पता भी नहीं चलेगा। इसकी रेखा भी नहीं खिंचेगी भीतर कि कब छोड़ दिये, किस तारिख में। वह छूटेगा। इसलिए ब्रम्हचर्य को मैं समाधि का बाई-प्रोडक्ट मानता हूं। समाधि की तलाश असली बात है, ध्यान की तलाश असली बात है। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा वैसे-वैसे सागर में उतरना शुरू हो जायेगा। जैसे-जैसे आप आनंद के सागर में उतरेंगे, वैसे-वैसे सुख की आकांक्षा क्षीण होने लगेगी। वह होती ही दुखी चित्त में है। वह क्षीण होने लगेगी। और एक दिन, जिस दिन आप आनंद के सागर में डूब जायेंगे, उस दिन अगर कोई आपसे कहे कि आपके बड़ा महान कार्य किया कि कुआं छोड़ दिया, तो आप सिर्फ हंसेगे। आप कहेंगे कि "मुझे पता नहीं कुआं कब छूट गया। और महान कार्य तुम कर रहे हो कि तुम कुएं में हो, जबकि सागर बहुत करीब है! महान कार्य मैं नहीं कर रहा हूं!"वह आदमी कहेगा, "महान कार्य तुम कर रहे हो कि जब सागर करीब है और तुम सागर में हो सकते हो, तब भी तुम कुएं में हो!"
तो दो तरह के लोग हैं हमारे पास-एक कुएं में पड़े लोग वे भी सागर से वंचित हैं, कुएं में ही डूबे हुये हैं। और दूसरे तरह के वे लोग जो कुएं को छोड़कर बाहर खड़े हो गये हैं। वे सागर से भी वंचित हैं और कुएं से भी वंचित हैं! और उनकी पीड़ा असह्य है। लेकिन उनकी पीड़ा को हम सहनीय बनाते हैं; आदर, सत्कार, सम्मान-इससे सहनीय हो जायेगा।
इसलिए मैं ब्रम्हचर्य की अलग से बात हीं नहीं करता। और ब्रम्हचर्य शब्द भी कहता है कि उसमें यौन से कोई संबंध नहीं है। उस शब्द का मतलब है- ब्रम्ह जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। जब शब्द में यौन का संबंध नहीं है। उस शब्द में कहीं कोई यौन की बात ही नहीं है। यानी ऐसे लोंगो की चर्या को ब्रम्हचर्य कहा जाता है, जो ब्रम्ह को उपलब्ध हुए हैं। जिन्होंने उस परम सागर को अनुभव किया और उस परम सागर का अनुभव करने की वजह से बूंद-बूंद की तृषा उनकी छूट गयी। एक-एक बूंद का सवाल न रहा है, बूंद का हिसाब न रहा। इन्हें मै त्यागी नहीं कहता, इन्हें मैं परम भोगी कहता हूं। क्योंकि ब्रम्हचर्य से बड़ा भोग नहीं है। क्योंकि परमात्मा से बड़ा भोगी कोई हो भी नहीं सकता। और उसकी जैसी चर्या का मतलब की यह है कि जहां आनंद ही आनंद रह गया है। जहां सब कोर-किनारों से द्वार-दरवाजों से आनंद बरस पड़ा है। अब वह इतना बरस पड़ा है कि उनके लिए कहां हम मांगते फिरते हैं, किससे मांगते फिरते हैं।
और ब्रम्हचर्य का दूसरा मतलब यह है कि ऐसा आनंद, जो स्वयं से अविर्भूत होता है। अब्रम्हचर्य का मतलब है, ऐसा आनंद या ऐसा सुख जो हम दूसरे में तलाश करते हैं। सेक्स बुनियादी रूप से सुख की दूसरे में तलाश है; अनिवार्य रूप से दूसरे व्यक्ति में सुख की तलाश है। और ब्रम्हचर्य सुख की अपने में तलाश है। और अपने में तलाश का नाम ध्यान है।
इसलिए मैं बात ही नहीं करता ब्रम्हचर्य की। मेरी समझ यह है कि ध्यान बढ़े, गहरा हो, फैले, ब्रम्हचर्य उसके पीछे आयेगा। और वह भोग की तरह आयेगा, परम भोग की तरह, प्रयोग; त्याग की तरह नहीं। हां, बहुत कुछ उसके आने से छूट जायेगा, मगर वह कचरे की तरह छूटेगा। सुखे पत्ते जैसे वृक्ष से गिरते हैं, ऐसा गिरेगा। क्योंकि नये पत्ते आ गये हैं, बहुत हरे पत्ते आ गये हैं, सूखे पत्तों को जगह करनी पड़ रही है। लेकिन न वृक्ष को पीड़ा है कि पत्ते गिर रहे

हैं, न पत्तों को पता चलता है कि गिर रहे हैं, क्योंकि वह सूख गये हैं। और वृक्ष नये पत्तों के आगमन की खुशी में नाच रहा है। वह सूखे पत्तों का कहां हिसाब रखे! वे गिर जायेंगे हवाओं में चुपचाप, उनका कभी पता नहीं चलेगा। और अगर हम किसी नये पत्तों से लद गए वृक्ष से पूछें कि "तुम बड़े महात्यागी हो, तुमने कितने-कितने त्याग कर दिये, सारी हवाओं में सड़कों पर तुम्हारे ही त्याग के पत्ते हैं, डोल रहे हैं!" तो वह करेगा, "कुछ पता नहीं है। क्योंकि मैं यहां रस लिए हूं नए पत्तों के साथ नाचने में। पुराने सूखे पत्तों का कौन हिसाब रखे!" हां, "सूखे वृक्ष से अगर गिर जायें पत्ते, जिसमें नये पत्ते न आये हों, तो हिसाब रखेगा। क्योंकि उसके बाद ठूंठ ही रह जाने वाला है।
तो हिसाब रखेगा कि कितने-कितने गिर गये, रोज गिरते चले जा रहे हैं! इतने उपवास आज किये! इतने उपवास पिछले चौमासा में किये। रोज पत्ते गिर रहे हैं, नये पत्ते का कुछ पता नहीं है। स्त्री छोड़ दी है, घर छोड़ दिया है, धन छोड़ दिया है, सब छोड़ दिया है। एक-एक पत्ते का हिसाब रखेगा। नया तो अंकुरित नहीं हो रहा है। ठूंठ बड़ा होता चला जा रहा है, सूखता चला जा रहा है और पत्ते गिरते चले जा रहे हैं। गिराये चला जा रहा है, तो उनके घाव भी छूट जाते हैं। तो जिसको हम ब्रम्हचर्य कहते हैं, वह एक तरह की दमित यौन की प्रकिया है। और मेरे लिए ब्रम्हचर्य, ईश्वर-अनुभूति है; विकसित स्थिति है। और अनुभूति के साथ रूपांतरण होता है, सब बदल जायेंगे। और जब तक हम ब्रम्हचर्य को इस अर्थ में न लें, तब तक जीवन के साथ बहुत अनाचार होता है। क्योंकि वह जो गलत किस्म का ब्रम्हचर्य हमारे मन में है, निषेध, निगेटिव, उसने बहुत कलषु पैदा किया है। क्योंकि जो लोग कुआं छोड़ देंगे और सागर न मिलेगा, तो जैसा मैंने कहा कि कुएं में मेंढक उनको नमस्कार करेंगे, वैसे ही वे कुएं के पास खड़े हुए तड़पते लोग कुएं की निंदा करेंगे, पूरे वक्त। वह अनिवार्य है। वे निंदा आपके लिए नहीं कर रहे हैं; वे निंदा अपने ही मन में समझाने के लिए कर रहे हैं। अगर वे दस मिनट के लिए भी निंदा करने से रूक जायें, तो कुएं में डर है। तो उसको कंडेम करेंगे।
तो सुबह-शाम मंदिर और गुरूद्वार और सब जगह वे समझा रहे हैं लोगों को
कि कुआं बहुत गंदा है। यह वे दूसरे को कम समझा रहे हैं, यह बार-बार कहकर अपने को समझा रहे हैं, लेकिन कुएं में कूद जाने का पूरे वक्त डर है। अगर उनको सुनने वाला न मिले, कोई न मिले जो उनसे समझने को राजी हो; हम सब कुएं में मजे में हैं; तो आपको पता नहीं किस क्षण में वे कुएं में वापस कूद जायें!
तो वह जो ट्रिक है उसके पीछे कि वे कुएं की निंदा करते चले जाते हैं। निंदा करने की वजह से खुद के कूदने की सामर्थ्य तोड़ते चले जाते हैं; आप आदर दिये चले जाते हैं, आदर की वजह से अहंकार तृप्त होता है; अहंकार तृप्त होता है, तो कूदना मुश्किल हो ही जाता है। इन दोनों प्रक्रियाओं से, जिसको आप दमन वाला ब्रम्हचर्य कहें, वह पलता हैं, पुसता है। वह आदमी तो विकृत हो जाता है, लेकिन जिन-जिन से वह बातें करता है, उन सबको भी विकारग्रस्त करता है। क्योंकि वह जब कुएं की निंदा करता है उनके सामने, जो कुएं में हैं, तो सागर में तो नहीं पहुंचते कुएं में रहने वालो लोग, लेकिन कुआं पायजनस हो जाता है। तो वहां जितने भले ढंग से, सुसंस्कृत, जितने सहज ढंग से वे जी सकते थे, वह भी मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उनके मन में भी यह निंदा का स्वर, जब कुएं के पाट पर बैठे हुए मेंढक समझा रहे हैं, तो उनके मन में भर जाता है। जा भी नहीं सकते, डोल भी नहीं सकते, इनकी कठिनाई भारी हो जाती है! नीत्शे ने एक बहुत अद्भुत बात कही है। उसने कहा कि तथाकथित धार्मिक लोगों ने लोगों को सेक्स से मुक्त करना चाहा; मुक्त तो नहीं हुए लोग, लेकिन सेक्स पायजन्ड हो गया। कोई मुक्त तो नहीं हुआ उससे, लेकिन जो यौन की सहजता थी, विकृत हो गई; वह कुरूप हो गई। अब एक पत्नी भली-भांति जानती है कि पति जो है, उसे नर्क ले जाने का रास्ता है। अब जो पति नर्क ले जाने का रास्ता है या जो पत्नी नर्क ले जाने का रास्ता है, इनके बीच प्रेम का फूल कैसे खिल सकता है? असंभव है। क्योंकि जो हमें नर्क की तरफ घसीट रहा हो, उसके और हमारे बीच

प्रेम का फूल नहीं खिल सकता है। उसके और हमारे बीच जो भी खिलेगा, वह कुरूप होने वाला है।
कोई पत्नी अपने पति को आदर नहीं कर सकती, कितना ही कहे कि परमात्मा है। कोई पति अपनी पत्नी का आदर नहीं कर सकता, कितना ही कहे वह उसका आधा हिस्सा है, धर्म पत्नी है। कितनी ही ये सारी बातें करें, क्योंकि सेक्स के संबंध में जो दृष्टि है, वह जो जहरीला भाव है कि पाप है, नर्क है, दुख है, यह सब पापों की जड़ है, वह तो बीच में खड़ा है। उसी का तो संबंध है सारा पति और पत्नी का।
दाम्पत्य पूरा का कुरूप हो गया है। कुरूप किया है उन लोगों ने, जिन्होंने ब्रह्मचर्य की एक नकारात्मक दृष्टि दी, ब्रम्हचर्य को यौन-निंदा बनाया; उनको विकृत कर दिया। और वे जो पाट पर बैठ गये हैं कुएं के, उनके चित्त में हजार तरह की विकृतियां पैदा हुई हैं, जो स्वभाविक है।
तो मेरी दृष्टि में ब्रम्हचर्य की आमूल व्याख्या बदलने की जरूरत है। मूल व्याख्या वही है उसकी कि वह जीवन के परम आनंद की उपलब्धि है। हम परम आनंद को खोजें, हम छोड़ने की बात न करें। हां, परम आनंद मिलने से जो छूटता जाये, छूटता जाये; छूट जायेगा।
इसलिए और भी एक बात--जैसा मैंने कहा कि जो व्यक्ति भी चित्त का दमन करेगा, काम का दमन करेगा, फिर बहुत सकझने जैसी बात है... । हमारे भीतर जो काम की शक्तियां हैं, वे ही क्रिएटिव फोर्स हैं। हमारे भीतर जो ऊर्जा है काम की, वही सृजनात्मक शक्ति भी है। तो जो कौम सेक्स सप्रेसिव होगी, वह कौम सृजनात्मक नहीं होगी। वह कुछ सृजन नहीं करेगी, क्योंकि जिस शक्ति से सृजन होता है, वह उसी शक्ति कि निंदा में लग गई है। और जिस कौम को दफा काम के प्रति दुश्मनी का भाव आ गया, उसकी समस्त नैतिकता काम केंद्रित हो जायेगी। अगर मैं आज कहूं कि फलां आदमी चरित्रहीन है, तो किसी को ख्याल नहीं आता कि वह झूठ बोलता होगा। यही ख्याल आता है कि उसकी कोई यौन संबंध में गड़बड़ी होगी। किसी को ख्याल नहीं आता है कि वह समय का पालन न करता होगा। किसी को ख्याल नहीं आता कि आश्वासन पूरे न करता होगा, किसी को ख्याल में नहीं आता कि दूध में पानी मिलाता होगा। किसी को ख्याल नहीं आता कि ब्लैक माकेंटिंग करता होगा; टैक्स न चुकाता होगा। यह ख्याल ही नहीं आता चरित्रहीन का।
जैसे ही हमने कहा कि फलां आदमी चरित्रहीन है, फौरन ख्याल आता है कि कुछ सेक्स की कोई गड़बड़ है। चरित्र जैसे यौन का समतुल हो गया। और इसलिए भारत में इतनी चरित्रहीनता है। यानी एक आदमी सिर्फ इतना ही साध ले कि दूसरे की स्त्री की तरफ आंख उठाकर न देखे; मन से देखता रहे, चित्त में सोचता रहे, इतना ही पक्का साध ले कि एक ही पत्नी के साथ जिंदगी गुजारे, दूसरे की स्त्री के प्रति कभी कोई भाव न लाये, फिर वह सब कुछ करे, तो भी वह चरित्रहीन नहीं होता।
इसलिये पश्चिम या उन मुल्कों में जहां चरित्र ने व्यापक अर्थ लिया, इतना सीमित अर्थ नहीं लिया, वहां उनके व्यक्तित्व में नैतिकता और रूपों में खिली। तो और छोटी-छोटी बातों को भी ख्याल में लेना अनिवार्य हो गया। हमारे लिये एक "काम" पर बाकी है। एक आदमी इतना ही काम करे कि वह किसी तरह सेक्स अपनी जिंदगी से रोक ले, वह हमारे लिये महात्मा हो जायेगा। और कोई काम की जरूरत ही नहीं है। इतना पर्याप्त है! वह आदमी बैठ जाये एक जगह आंख बंद करके, अपनी जिंदगी भर सेक्स से बचाकर गुजार दे, तो हमारे लिये फौरन आराध्य हो गया। यह बड़ी अजीब-सी बात है! तो यह क्रिएटिव कैस हो पायेगा, यह क्रिएटिव नहीं हो पायेगा।
तो हमारी सारी नैतिकता जो है, वह ठीक डायमेंशंस नहीं ले पाई है। इसलिये कोई कठिनाई नहीं है, बाकी सारी अनैतिकता चलती जाती है। उसकी कोई चिंता नहीं पैदा होती।
और भी मैं आपसे कहूं, जब हम दमन करेंगे अपनी ऊर्जा का, तो उसका हम कहीं
भी प्रयोग करने में डरेंगे-कहीं भी डरेंगे। और समस्त सृजन जो है, वह उसी ऊर्जा से है इसलिये आमतौर से होता है कि कोई बड़ा चित्रकार है, बड़ा मूर्तिकार है, संगीतज्ञ है, वैज्ञानिक है, दार्शनिक है, अक्सर यौन उसके

लिये अनिवार्य नहीं रह जाता। उसके बाहर रह जाता है। अक्सर बिना कठिनाई के। और उसका कारण कुल इतना है कि जो भी सृजन की शक्ति है, वह एक दिशा में आयोजित हो जाती है। उसकी कोई कठिनाई नहीं आती। इस दुनिया में जो भी प्रतिभाशाली आदमी है, वह बिना यौन के सहज रह सकता है। अगर उसकी प्रतिभा कहीं नियोजित हो गई, तो उसके पास शक्ति का एक प्रवाह है।
और भी एक मजे की बात है कि अगर आप कुछ भी पैदा कर लें, तो यौन की बहुत गहरी से गहरी तृप्ति उपलब्ध होती है क्योंकि यौन की तृप्ति मूलतः कुछ पैदा करने की तृप्ति है। इसलिये स्त्रियां दुनिया में कुछ क्रिएट नहीं कर पाईं, क्योंकि बच्चा पैदा करने से उनका काम पूरा हो जाता है। उनको और क्रिएशन का ख्याल पैदा नहीं होता।
बहुत मजेदार बात है कि सारा क्रिएटिव जो भी काम है, वह पुरूषों का है; स्त्रियों का नहीं है! यहां तक कि पाक-शास्त्र में भी जो खोजे हैं, वे पुरूषों की हैं, स्त्रियों की नहीं हैं। कम से कम चौके में उसकी खोज होनी चाहिए, वहां भी उसकी खोज नहीं है! और उसका बहुत गहरा कारण इतना है कि उसकी जो सृजन करने की क्षमता है, वह बच्चे पैदा करके पूरी हो जाती है। और बच्चे पैदा करने मैं पुरूष एक्सिडेंटल है। उसका कोई अनिवार्य, लंबा कोई हाथ नहीं है। वह तो एक क्षण के बाद बाहर हो जाता है।
हजारों साल तक ऐसी सैकड़ों कौमें थी जमीन पर, जो यह नहीं मानती थीं कि संभोग से बच्चे पैदा होते हैं। बहुत मुश्किल से यह ख्याल आया, क्योंकि बच्चा तो नौ महीने के बाद होता है। नौ महीने के काज और इफेक्ट को जोड़ना बहुत बाद में ख्याल आया। तो पुरुष तो बिल्कुल ही बेमानी मालूम होता है, उसका कहीं कोई बहुत अनिवार्य हिस्सा नहीं है। लेकिन स्त्री तो अनिवार्य है। वह नौ महीने बच्चे को पेट में रखेगी, सम्हालेगी। फिर बड़ा करेगी। और इस सब में उसका जो सृजन करने का चित्त है, वह पूरा हो जायेगा।
तो पुरूष क्या करे? तो एडलर जैसे लोग, जो इस संबंध में बहुत समझने वाले लोग हैं, उनका कहना है कि पुरूष ने और चीजें क्रिएट करके सब्स्टीट्यूट बनाया कि हम कोई स्त्री से नीचे नहीं है, पीछे नहीं हैं। पुरूष ने इनफिरिआरिटी अनुभव की कि वह कुछ पैदा नहीं कर पाता। स्त्री पैदा करती है, और वह कुछ पैदा नहीं करता! तो उसने मूर्तियां बनाईं, उसने मकान बनाये, उसने ताजमहल बनाये। वह आकाश में चांद पर जायेगा। विज्ञान की खोज करेगा, कोई शास्त्र लिखेगा। वह स्त्री को जवाब दे रहा है कि हम भी पैदा कर रहे हैं। और जो यह पैदा कर लेगा, उसके भीतर से सेक्स की जो तीव्रता है, वह क्षीण हो जायेगी।
यह भी मजे की बात है कि स्त्री जैसे ही मां बनती है, सेक्स के प्रति उसकी तीव्रता कम होती चली जाती है। फिर वह बोझ की तरह ढोती है। फिर उसके लिए सेक्स सुखद नहीं रह जाता। मैं तो हजारों स्त्रियों को निकट से उनके व्यक्तिगत मन को जानता हूं। मुझे अब तक ऐसी स्त्री नहीं मिली, जो सेक्स में बहुत रस ले; रसपूर्ण हो सके। उसका सारा रस मां बनने पर शिथिल होने लगता है। फिर इसके बाद वह बोझ की तरह ढोती है। वह बोझ की तरह ढोती रहती है उसको। क्योंकि उसका क्रिएटिव काम पूरा हो गया। उसने कुछ बना दिया जगत में।
तो जिन लोगों ने ब्रम्हचर्य को निंदा बना ली यौन की, उन लोंगो ने सृजन
के द्वार भी रोक दिये। और सारी की सारी क्षमता को कान्फ्लिक्ट में लगा दिया, अपने ही भीतर लड़ाई में लगा दिया। जो कुछ पैदा हो सके बाहर, वह भीतर लड़-लड़ कर नष्ट होता चला गया। इसलिए हमारे मुल्कों में लाखों संन्यासी हैं, हजारों वर्षो से हैं। ये संन्यासी इतना काम कर सकते थे, कि सारी दुनिया हमसे पीछे पड़ जाती। क्योंकि संन्यासी की सारी व्यवस्था हमने कर दी है। उसे न कोई चिंता है, न कोई फिक्र है। न मकान बनाना है, न दुकान चलानी है। लाखों लोंगों को हमने मुक्त रखा है बिल्कुल पूरी तरह से। अगर उन्होंने विज्ञान की खोज की होती, अगर उन्होंने कला की खोज की होती, तो हमारा मुल्क सारी दुनिया में समृद्धतम दान देने वाला मुल्क होता। लेकिन वह कुछ न कर पाये, क्योंकि एक बड़ा काम पकड़ा दिया है आपने, वह सेक्स से लड़ता रहा है! वह काम इतना बड़ा है कि उसमें उसकी जिंदगी निपट जाती। बस, वह उसी में लगा है! तो

सारे चौबीस घंटे, संन्यासी जो है, स्त्री से लड़ रहा है। पूर वक्त उसकी लड़ाई वही जारी है।
तीसरी बात भी ख्याल में ले लेने जैसी है कि जहां भी यौन का विरोध होगा, वहां सौंदर्य के प्रति दुश्मनी पैदा हो जाती है। क्योंकि सौंदर्य का यौन से बहुत निकट संबंध है। तो सौंदर्य का जो बोध है, जो एस्थेटिक बोध है, वह कम हो जाता है। और वह बोध अगर कम हो जाये, तो जिंदगी बड़ी ही नीरस हो जाएगी। तो ब्रम्हचर्य की शिक्षा ने हमारे इस मुल्क में तो जिंदगी को बुरी तरह नीरस बनाया। बल्कि ऐसी स्थिति ला दी कि जो एक आदमी अपनी जिंदगी को जितना नीरस बना ले, उतना पूज्य हो जाये! जितना गंदा और कुरूप बना ले उतना पूज्य हो जाये! स्नान न करे, दतौन न करे, तो महामुनि हो जाये! पाखाने में बैठ जाये और वहीं बैठकर खाना खाये, तो परमहंस हो जाये! तो एक सौंदर्य का जो बोध है, वह हमसे छिन गया। और यह भी बात ध्यान में लेने जैसी है कि जहां-जहां यौन का विरोध होगा, वहां-वहां वह जो जीवन की अभिप्सा है कि हम जीयें आनंद से, वह क्षीण हो जायेगी और सुसाइडल माइंड पैदा हो जायेगा, आत्मघाती चित्त पैदा हो जाएगा। क्योंकि सेक्स बहुत गहरे में, वह जो अनंत जीवन चारों तरफ व्याप्त है, उसी अनंत जीवन की आगे गति है। तो अगर एक बार यह सेक्स से दुश्मनी शुरू हुई, तो जीवन से दुश्मनी शुरू हो जाये, लाइफ निगेशन शुरू हो जाये। और तब एक बोझ और आत्मघात जैसी वृत्ति हो जायेगी।
जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह मेरे हिसाब से एक स्लो सुसाइड है, धीमी-धीमी, ग्रेजुअल। इकट्ठा मरने की हिम्मत नहीं जुटाता है वह आदमी। वह थोड़ा-थोड़ा मरता चला जाता है। फिर बस, वह एक मरा हुआ आदमी रह जाता है। और हम सब भक्त गण जो उसके चारों तरफ रहते हैं, पूरी तरह जांचते रहते हैं कि कहीं से जिंदगी शेष तो नहीं है! खाने में रस तो नहीं ले रहा है? गया! खाने में इसने रस लिया! कपड़ा पहनने में रस तो नहीं ले रहा है? कोई जिंदगी के प्रति प्रेम का लक्ष्मण तो कहीं से प्रगट नहीं हो रहा है इसमें? किसी स्त्री से तो बहुत हंस कर बात नहीं कर रहा है? गया! हम सब तरफ से जांच-परख कर रहे हैं। तो हमारी पूरी की पूरी कौम एक इमप्रेजेन्मेंट हो गयी है, जिसमें कुछ कैदी हैं, हिंदू-मुसलमान भी; महात्मा वगैरह रहते हैं, और हम सब पहरेदार हैं। और सब सिद्ध हो जाता है कि जीवन में रस नहीं ले रहा है, तो उसके पैर छूते हैं। यह अब पक्का है, आदमी बिल्कुल पक्का हैं!
यह सब का सब बहुत ही रोगग्रस्त है और बहुत ही गहरी बीमारी को पैदा करने वाला है। इधर तो मैं निरंतर यह सोचता हूं कि अगर दुनिया में धर्म को बचना है, तो उसे लाइफ अफरमेटिव होना पड़ेगा, जीवन स्वीकार करने वाला होना पड़ेगा। न केवल स्वीकार करने वाला, बल्कि जीवन में आल्हाद लेने वाला होगा। ऐसा धर्म चाहिए जो हंस सकता हो, नाच सकता हो, प्रेम कर सकता हो, प्रफुल्लित हो सकता हो, तो ही धर्म बचेगा। नहीं तो जिस धर्म ने लोगों की हत्या कर दी, वे सब लोग मिल कर उसकी हत्या कर रहे हैं। अब वह बच नहीं सकता। उसने काफी सता लिया, बहुत टार्चर किया। अच्छी तरह सता लिया।
और इसलिए आप एक बात देखकर बहुत हैरान होंगे कि आमतौर से तपस्वी, त्यागी ईडियट होते हैं। बुद्धि जैसी चीज उनके पास नहीं होती है। आमतौर से बुद्धिहीन होते हैं। वह शर्त है, क्योंकि वे बुद्धिहीन न हों, तो यह नासमझी वे कर रहे हैं, यह करना बहुत मुश्किल है। इस पर सवाल उठेगा उनके मन में, तुम यह क्या कर रहे हो? क्या हो रहा है! अब कोई आदमी मुंह पर पट्टी बांधे बैठा हुआ है, कोई कुछ किये बैठा है, कोई कुछ किये बैठा है! इसमें इडोयोसिटी जरूरी है। इसमें थोड़ा जड़, बुद्धिहीन होना जरूरी है। इसलिए अगर हम अपने संन्यासियों की "आई क्यू" निकलवायें, तो वह किसी भी दूसरे व्यक्ति से कम निकलेगा। और बुद्धि की जरूरत भी नहीं है। कुछ खोजना है, कुछ बनाना है, कोई निर्माण करना है; वह तो उसे करना नहीं है। उसे तो सिर्फ एक कैदी की तरह जो अपने को चारों तरफ से खुद की जंजीरों से कस कर खड़ा हुआ है, खड़े रहना है। इसलिए न्यूनतम बुद्धि आवश्यक है।
यह जो स्थिति है, यह स्थिति बिल्कुल ही जल्दी से जल्दी तोड़ देने जैसी स्थिति है। और इधर मैं निरंतर सोचता हूं, सौभाग्य की बात हो सकती है कि यहां एक नये संन्यासी का वर्ग पूरे मुल्क में पैदा किया जाए--जो नाच भी

सकता है, गा भी सकता है, हंस भी सकता है, जो जीवन में सब तरह का रस भी ले सकता है और फिर भी एक परम अनुभूति की दिशा में यात्रा पर है। उस यात्रा में और इस आनंद भाव में कहीं विरोध नहीं है, कोई दुश्मनी नहीं है।
तो ऐसी कोई ब्रम्हचर्य की धारणा, जो सब स्वीकार करती हो, आनंद की खोज करती हो, मेरी समझ में आती है। निषेध की वृत्ति बिल्कुल समझ में नहीं आती।

प्रश्नः आपसे कहा कि परमानंद की प्राप्ति पर सभी आनंद फीका पड़ जाता है... !

फीका क्या पड़ जाता है, आनंद ही नहीं रह जाता। फीका पड़ जाने का मतलब इतना है।

प्रश्नः उस आनंद के जब हम ख्याल में बैठते हैं, तब तक तो आनंद की अनुभूति होती है। लेकिन बाद में जब कार्य-व्यवहार में फिर लग जाते हैं, तो भूल जाते हैं। फिर मन कार्य-व्यवहार में लग जाता है। तो आनंद की अनुभूति सदा बनी रहे, इसके लिए क्या मार्ग हो सकता है?

असल बात यह है कि वह जो ध्यान में थोड़ी देर को आनंद मिलता है, और फिर खो जाता है तो वह आनंद नहीं है-पहली बात। वह सिर्फ दुख का अभाव है। इस बात के फर्क को समझ लेना चाहिए। वह आनंद नहीं है।
असल में एक घंटे आपकी जिंदगी के दुखों को जो जाल है, आप एक विभिन्न दिशा में काम करने की वजह से उस जाल को भूल जाते हैं-व्यस्तताओं की, चिंताओं की, दुकान की, बाजार की वह जो दुनिया है-वह आप एक घंटे के लिए भूल जाते हैं। उस भूलने कारण आपको भ्रम पैदा होता है कि आनंद मिल रहा है। आनंद नहीं मिल रहा है। सिर्फ जो दुख मिल रहा था, वह फिलहाल नहीं मिल रहा है। तो उसकी वजह से भ्रांति पैदा होती है।
वह ध्यान आनंद नहीं है। वह सिर्फ ध्यान के दूसरी दिशा में गतिमान होने के कारण, जिन दिशाओं में वह निरंतर उलझा रहता है, उनको भूल जाना है। ध्यान का तो आनंद जिस दिन मिलेगा, उस दिन फिर आप यह नहीं कहेंगे कि चला गया। वह जाता ही नहीं; उसके जाने को कोई सवाल नहीं है। क्योंकि ध्यान का जो आनंद है, वह किसी भी बाहर की कंडीशन पर निर्भर नहीं है। असल में चीजें आती हैं, जाती हैं। यह बाहर की कंडीशन पर निर्भर है। सूरज की रोशनी जल रही है। सांझ हो जाएगी, रोशनी चली जाएगी, क्योंकि वह रोशनी हमारी तो थी नहीं, वह सूरज की थी। सूरज जब था, वह थी; सूरज जब चला गया, वह चली गयी।
आप आये, आपके आने से मुझे सुख मिला; आप चले गये, तो दुख मिला। आपको कब
तक बिठा रखूंगा? जैसे अगर बहुत देर बिठाया, तो बैठने से दुख भी मिलने लगेगा, जैसे सुख मिला। क्योंकि थोड़ी देर में सुख भी उबा देगा और जब सुख उबाता है, तो दुख बन जाता है। इसलिए सब सुख देने वाले थोड़ी देर में दुख देने वाले बन जाते हैं। इसलिए सुख देने वालों से भी थोड़ा-थोड़ा फासला चाहिए। बीच-बीच में गैप चाहिए। नहीं तो वह भी दुख देने वाला बनता है। पति- पत्नी इसलिए दुख देने वाले बन जाते हैं, क्योंकि वे गैप छोड़ते ही नहीं। चौबीस घंटे साथ! सारी जिंदगी की कसम खा ली, कि साथ हैं! उसी दिन दुख शुरू हो गया।
तो जिस दिन वह मिलेगा, वह चूंकि बाहर की किसी भी परिस्थिति पर वह निर्भर नहीं है, इसलिए बाहर का कोई परिवर्तन उसमें परिवर्तन नहीं लायेगा। आप मंदिर में बैठे हैं कि मस्जिद में, कि दुकान पर बैठे हैं कि दफ्तर में, इसमें से अगर कोई भी कंडीशन उसके लिए अनिवार्य हो, तो फिर गड़बड़ हो जायेगी। नहीं, उसके लिए कोई कंडीशन नहीं है, वह अनकंडीशन है। वह आपके भीतर से आ रहा है। उसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। उसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। पड़ता ही नहीं फर्क। और फर्क पड़े, तो जानना चाहिए कि वह इसलिए फर्क पड़ा कि जिसे हमने ध्यान का आनंद समझा, वह ध्यान का आनंद नहीं था, जिंदगी के दुख से थोड़ी देर के लिए पलायन था, एक्सेप था। घंटे भर के लिए बाहर हो गये थे।

वह बाहर होना कोई शराब पी कर भी लेता है। वह जरा केमिकल ढंग है बाहर होने का! कोई आदमी सिनेमा देखकर कर लेता है, वहा जरा सांसरिक ढंग है बाहर होने का। कोई आदमी भजन-कीर्तन करके कर लेता है, वह जरा धार्मिक ढंग है बाहर होने का! बाकी तो उसमें थोड़ी देर को बाहर हो गये हैं।
बाहर होना कई तरह से हो सकता है। बहुत उपाय खोजे जा सकते हैं। इसलिए रात की नींद में भी हमको सुख मिलता हैं, क्योंकि वह भी बाहर हो जाने का प्राकृतिक ढंग है। जो प्रकृति ने दिया हुआ है कि आप रात सो गये, खो गयी उतनी देर के लिए सारी परेशानी। लेकिन ध्यान का आनंद पाजीटिव स्टेट है। यह सिर्फ निगेशन नहीं है।
यह ऐसा है कि सामने एक बंदुक लेकर आदमी खड़ा है, हमने आंख बंद कर ली। कोई डर न रहा। क्योंकि अब आंख बंद किया हुआ खड़ा हुआ आदमी अब नहीं है। लेकिन वह खड़ा है आदमी, जब आप आंख खोलेंगे, वह मिलेगा आपको। तब आप कहेंगे, जो आनंद मिला था, वह खो गया! वह आनंद मिला नहीं था, वह सिर्फ आप उस आदमी को भूल गये थे और वह बंदूक लेकर फिर भी खड़ा था। वह कह रहा था, आंख खोलिये न!
बाजार में आप लौटेंगे, बाजार की सारी जिंदगी का उलझाव वहां खड़ा है। घर लौटेंगे, पत्नी बच्चें का उलझाव वहां खड़ा है। वह फिर आपको कहेगा कि आ जाइए। कहां भाग गये थे! सब खोने लगा। वह ध्यान से उसका कोई लेना-देना नहीं हैं इसलिए ध्यान को एस्केप न बनाइए। पलायन नहीं है ध्यान।
और इसको कसौटी समझिये कि ध्यान में जो मिले, उसकी अगर अंतर्धारा बहने लगे चौबीस घंटे--जागते, उठते-बैठते, काम करते, खाली, बाजार में, घर में, सुख में, दुख में, प्रिय के मिलन में, अप्रिय के मिलन में--सबके बीच उसकी धारा बहने लगे सतत, यानी वह श्वास जैसी चीज हो जाये कि आप कुछ भी करें, श्वास चल ही रही है, तब आप समझना कि ध्यान से आनंद उपलब्ध हुआ है।
इसलिए संन्यासी भागता है। इसलिए भागता है सब छोड़-छाड़ कर, क्योंकि उसको लगता है कि जो मुझे ध्यान से मिलता है, वह घर में आता हूं, खराब हो जाता हैं। और घर को छोड़कर भाग जाता है। वह परमानैंट एस्केप है, और कुछ भी नहीं है। अगर उसको आप घर में ले आओ, वह फिर दुखी हो जायेगा, चाहे चालीस साल से संन्यासी रहा हो, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसने एक बात देख ली कि एस्केप है। घंटे भर को निकल जाता हूं घर से, तो सुख मिलता है तो चौबीस घंटे के लिए क्यों न निकल जाऊं! चौबीस घंटे के लिए भी वह भाग सकता है। लेकिन फिर भी वह ध्यान का आनंद नहीं होगा।
ध्यान का आनंद जो है, उसमें कोई भागने का उपाय ही नहीं है। भागने की जरूरत ही नहीं है। प्रयोजन भी नहीं है। और चुंकि वह निजी और आंतरिक है, इसलिए कोई भी परिस्थिति उसमें कोई फर्क नहीं डालती।
तो इसको कसौटी मान कर चलना चाहिए और जांचते रहना चाहिए कि जिसको मैं ध्यान का आनंद कह रहा हूं, क्या वह ध्यान का है? कि सिर्फ ध्यान-परिवर्तन का है, इसलिए अगर ठीक ख्याल बना रहे, तो वह पक्की कसौटी, वह खोये ही न। यानी आप उसे खोना चाहें, तो भी न खो सकें। आप जायें और लड़े किसी से और क्रोध करें और फिर भी आप पायें कि भीतर से उसकी अंतर्धारा बही जा रही है और क्रोध बाहर एक्टिंग से ज्यादा नहीं मालूम पड़ रहा है, और भीतर तो वह मौजूद है। तब आप समझना कि अब कुछ पाजीटिव, कोई विधायक गति भीतर हुई, अन्यथा नहीं हूई। इसलिए ध्यान का आनंद मिले, तब तो सवाल ही नहीं है कि उसको हम कैसे स्थायी करें। जिसको स्थायी करना पड़े, समझना कि वह ध्यान का नहीं है। जिसको स्थायी करना पड़े, वह ध्यान का नहीं है।

प्रश्नः ध्यान को प्राप्त कैसे हों? चित्त वृत्तियों का निरोध कैसे हो?

ध्यान में आइए--एक शिविर में आ जाइए। ऐसा भी नहीं है मामला। असल में डेलिकेट है मामला, बहुत नाजुक है। और वह नाजुकता ठीक से समझ लेनी चाहिए। ये दोनों बातें एक साथ सच हैं कि वह जब आएगा, तब आप पाएंगे कि अपने किये नहीं आया। लेकिन जब तक आपने कुछ नहीं किया है, तब तक आयेगा भी नहीं। ये दोनों ही बातें एक साथ सच हैं। यह मामला बहुत नाजुक है।

प्रश्नः जैस कुएं से बाहर निकलने का कोई प्रयास करे।

मैं कह नहीं रहा कि कुएं के बाहर निकलने का प्रयास करे। मैं यह नहीं
कह रहा। मैं तो यह कह रहा हूं कि वह जो कुएं में है, वह भी सागर का ही हिस्सा है, वह सागर को पहचान ले। उसमें कुएं के बाहर निकलना नहीं है। ऐसे भी कोई कुआं सागर से अलग नहीं है। जरा नीचे से उसके झरने जुड़े हैं, बस इतनी बात है। कुआं ऊपर से ही कुआं है, नीचे से वह सब सागर ही है।
कुएं से निकलने की कोई बात नहीं हैं, कि कोई कुएं से निकलकर सागर में चला जायेगा। वह तो सागर होने को खोजने की बात है। सागर खोज में आ जाये, तो कुआं सागर हो जायेगा। कहीं कोई जाने की बात नहीं है। ऐसे भी कुआं सागर है। वह सब नीचे जुड़ा है, सब सागर है।
कुएं की अपनी कोई हस्ती है? कुएं की अपनी कोई हस्ती नहीं है। वह जो ऊपर
से गोल घेरा दिखता है, वह आदमी का बनाया हुआ है; वह नहीं जुड़ा है सागर से। बाकी कुआं जो है, वह पानी जो है कुएं का, वह सागर से जुड़ा है। हजार-हजार रास्तों से जुड़ा है। सागर नीचे से भी उसको दे रहा है, सागर बादलों से भी उसको दे रहा है। वह सब तरफ से सागर से जुड़ा है। उसमें कोई ऐसा नहीं है कि कट आफ है।
कहीं से कोई रास्ता बनाना है आपको। पहचान लेना है कि कुआं ही क्या है। अगर कोई पूरे कुएं को ही पहचान ले, तो सागर से जुड़ जाये। इसलिए इन प्रतीकों की ठीक से समझ लेने की जरूरत है। नहीं तो बहुत गड़बड़ होगी।
और यह जो मैं कहता हूं कि आपके प्रयास से नहीं होगा, यह सिर्फ इसलिए कहता हूं कि आपका अहंकार मजबूत न हो, क्योंकि आपका अहंकार बाधा बनेगा। और साथ में यह भी कहता हूं कि आपके प्रयास के बिना न होगा। यह इसलिए कहता हूं कि कही आलस्य मजबूत न हो, आलस्य बाधा न बने।
अहंकार भी बाधा है, आलस्य भी बाध है, पर दोंनो से बचने की बात है। आप करें भी, और कर्ता भी न बनें। आप श्रम भी उठायें, और यह भी मानें कि मेरे श्रम से ही हो जायेगा। पर श्रम तो उठाना ही पड़ेगा। नहीं तो हो ही गया होता कभी का। श्रम तो उठा ही नहीं रहे हैं।
और अगर अ-श्रम से होता, तो हो ही गया होता। और अ-श्रम से होना है, तो सब होगा। फिर होगा, हमारा कोई संबंध नहीं है; उसकी बात भी करनी व्यर्थ है! न, श्रम तो उठाना ही पड़ेगा। और फिर भी यह जानना पड़ेगा कि मेरे ही श्रम से न हो जायेगा; यानी "मैं" मजबूत न होता चला जाये, नहीं तो वह बाधा बनेगा। आप श्रम करेंगे, और जब आप पाएंगे, तब आप कह सकेंगे कि मेरे श्रम से यह नहीं हुआ है। क्योंकि दो कौड़ी का मेरा श्रम था, और जो मिला है, इसकी कोई कीमत नहीं है। मैं कैसे कहूं कि वह मेरे श्रम से हो गया है! जब कभी ये दोनों चीजें सामने आएंगी, तभी ख्याल में आएगा।
इसलिये जिसको मिलेगा, वह कहेगा, "प्रभु की कृपा है।" वह कहेगा, "मेरे
से कुछ नहीं हुआ। मेरे से क्या हो सकता था!" लेकिन जिसको नहीं मिला है, अगर उसने समझा कि प्रभु की कृपा से मिलेगा तो गया। जिसे नहीं मिला है, उसे जो श्रम करना पड़ेगा। असल में उसकी श्रम की ही एक स्थिति उसको प्रभु-कृपा के योग्य बनाती है।
जैसे हमने यह दरवाजा खोल दिया है। लेकिन दरवाजा खोलने से ही रोशनी भीतर आ जाएगी, ऐसा नहीं है। सूरज भी उगा हुआ होना चाहिए, तो रोशनी भीतर आयेगी। और जब रोशनी भीतर आएगी, तो आप यह न कह सकेंगे कि हम भीतर ले आए। क्योंकि आप तो रातों में भी कई दफा दरवाजा खोल कर बैठै रहे हैं, और रोशनी नहीं आई है। सिर्फ दरवाजा खोलने से ही आ गयी है, ऐसा भी नहीं है। दरवाजा खुलना सिर्फ एक हिस्सा है। रोशनी का आना बिल्कुल दूसरी बात है, लेकिन दरवाजा बंद रहने से रूक भी जाती है, यह भी पक्का है।
अब यह बड़े मजे की बात है। दरवाजा बंद करके हम रोक सकते हैं, लेकिन दरवाजा खोल कर हम जरूरी रूप से ला नहीं सकते। लेकिन बंद करके जरूरी रूप से रोक सकते हैं। हजार सूरज खड़े रहें बाहर, काई फिकर नहीं है। हमारा दरवाजा

बंद है, और हमने अपने पर्दे डाल रखे हैं, तो सूरज कोई दरवाजे तोड़ कर भीतर नहीं घुसने वाला है! प्रतीक्षा करेगा बाहर।
इसलिए मैंने कहा कि नाजुक है। तब दोनों बातें ध्यान में रखनी हैं। दरवाजा खोलना है आपको, लेकिन जिस दिन सूरज की रोशनी भीतर आयेगी, आप ऐसा न कह सकेंगे कि मैं ले आया हूं। उस दिन आप यही कहेंगे कि "रोशनी आई। हां, अपनी तरफ से काम इतना ही था कि हमने बाधा नहीं डाली।" इससे ज्यादा नहीं--इससे ज्यादा नहीं।

पंथ प्रेम को अटपटो
दूसरा प्रवचन

मनुष्य विक्षिप्त क्यों है?

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक प्रदर्शनी में बहुत भीड़-भाड़ थी। बहुत नई-नई चीजें देखने को आई थीं। बहुत लोग उस प्रदर्शनी को देखने गये थे। एक आदमी एक कंगारू को भी लाया था प्रदर्शनी में दिखाने को। उसके झोपड़े के बाहर भी बड़ी भीड़ थी। लेकिन एक परिवार बड़े विचार में पड़ा था। पति बहुत चिंतित था, पत्नी भी बहुत चिंतित थी। वे सभी देखना चाहते थे। लेकिन उनके अठारह बच्चे और वे दो... कुल बीस थे। दस नये पैसे टिकट थी। लेकिन फिर भी बीस लोंगो के दो रुपये हो जाते थे। जो आदमी कंगारू प्रदर्शित कर रहा था, वह भी उनकी परेशानी देख कर उनके पास आया और उसने कहाः आप बड़े परेशान हैं?
उस आदमी ने कहाः बीस हैं हम... अठारह मेरे बच्चे हैं, मेरी पत्नी और मैं। कुछ सस्ते में दिखाना नहीं हो सकेगा? कुछ कंसेशन रेट पर दिखाना नहीं हो सकता? उस आदमी ने कहा, "ये अठारह बच्चे आपके ही हैं?" उस पिता ने कहा, "मेरे ही बच्चे हैं।" तो उसने कहा, "फिर फिक्र मत करिए। कंगारू आपको देख कर बड़ा प्रसन्न होगा। हम उसे बाहर ले आते हैं आपको देखने। और दस पैसे ये सम्हालिये कंगारू के देखने के!"
मैंने जब यह बात सुनी, तो मैं सोचने लगा, जानवर भी अब आदमी को देखने को बहुत उत्सुक होंगे! बहुत हो गया, जानवर को हम देखते रहे। अब जैसी हालत है पृथ्वी पर मनुष्य की, उसे देखने को जानवर भी उत्सुक होंगे। और कुछ न कुछ व्यवस्था करनी चाहिए कि आदमियों के अजायबघर बनें और जानवर वहां आदमी को देख सकें। वैसे भी अजायबघर बनाने की बहुत जरूरत नहीं; अगर जानवरों को दिल्ली ले जाया जा सके, तो काम पूरा हो सकता है।
राजधानियां अजायबघर हो गयी हैं। अनूठे तरह के लोग वहां इकट्ठे हो गए हैं। सब तरह के पागल और विक्षिप्त वहां इकट्ठे हो गये हैं। लेकिन राजधानियों में जो प्रगट हुआ है, उस सब में हम जिम्मेवार हैं। और कहीं किसी पैमाने पर हम सब उसमें भागीदार हैं। पूरी मनुष्य-जाति ही एक बड़ा अजायबघर हो गयी है।
मैंने सुना है, डार्विन जब मर गया... जब तक जिंदा था, तब तक आदमी उसे परेशान करते रहे, कारण कि उसने कहा कि आदमी बंदरों का विकास है, और आदमी सदा सोचता था कि हम भगवान के बेटे हैं। भगवान ने कभी ऐसा कहा नहीं, ऐसा कोई सर्टिफिकेट नहीं दिया! आदमी ऐसा सोचता रहा था। लेकिन जब डार्विन ने यह कहा कि आदमी बंदरों से पैदा हुआ है, तो डार्विन पर लोग बहुत नाराज हुए। लेकिन डार्विन सोचता था, कम से कम बंदर तो मुझे पर प्रसन्न होंगे लेकिन मरने पर बंदरों की प्रेतात्माओं ने उसे घेर लिया और कहा कि "हमारे साथ बहुत अन्याय किया है। आदमी को हमारा विकास कहते हैं? आदमी हमारा पतन है। भटके हुए बंदर आदमी हो गए हैं, गिरे हुए बंदर आदमी हो गये हैं, पतित हुए बंदर आदमी हो गये हैं। और अपने सिद्धांत में सुधार कर लो।" डार्विन ने कहा, "कहना तो मैं भी यही चाहता था, लेकिन विकास बताया तब भी आदमियों ने मुझे इतना परेशान किया; अगर बंदरों का पतन बताता, तब तो बहुत मुसीबत हो जाती!"
लेकिन मजाक जाने दें, आदमी की समस्या बहुत गंभीर है। और सबसे बड़ी समस्या यही है कि हमने समाज बनाने की कोशिश की थी, लेकिन समाज नहीं बना, अजायबघर बन गया है। मैं अजायबघर से गुजरता था, तब मुझे यह ख्याल आया। जंगल में भी जानवरों को देखा है। उनकी मुक्ति, उनका आनंद, उनकी प्रफुल्लता। उनके गीत पक्षियों के, उनके नृत्य, उनकी छलांगे, उनकी दौड़, खुले आकाश में, खुले सूरज के नीचे। और फिर अजायबघर में भी जानवरों को देखा है-उदास, कठघरों में बंद, बेचैन, परेशान।
एक अजायबघर से गुजरता था, तब मुझे ख्याल आया कि यही जानवर जंगल में भी हैं, यही जानवर अजायबघर में हैं, लेकिन फर्क बहुत है। सबसे बड़ा फर्क यह है कि वहां जंगल में वे मुक्त हैं, स्वतंत्र। और यहां अजायबघर में बंद हैं सीखंचों में। और जब मैंने पता लगाया कि जंगल और अजायबघर के जानवरों में

क्या-क्या फर्क पैदा हो जाते हैं, तो मैं बहुत चकित हो गया। मुझे पता चला कि जो बीमारियां जंगलों में जानवरों को कभी पैदा नहीं होतीं, वे अजायबघर में पैदा हो जाती हैं। जैसे, अल्सर जंगल के जानवर को नहीं होता, लेकिन अजायबघर के जानवर को होता है। अल्सर असल में बहुत गहरी चिंता से पैदा होता है। पेट में घाव हो जाते हैं, गहरी चिंता से। अल्सर मानसिक बीमारी है। आदमी को जो-जो बीमारियां होती हैं, वे अजायबघर के जानवरों को होती हैं, जंगल में जानवरों को नहीं।
और भी हैरान हुआ जानकर कि जंगल के जानवरों को किसी तरह की विक्षिप्तता मुश्किल से कभी घटित होती है; आमतौर से घटित नहीं होती। जंगल के जानवर आमतौर से पागल होते हुए नहीं पाये जाते, लेकिन अजायबघर में जानवर पागल हो जाते हैं। यह भी मैं जानकर हैरान हुआ कि जंगल के किसी जानवर ने कभी आत्मघात की, सुसाइड की कोशिश नहीं की है, लेकिन अजायबघर के जानवर आत्महत्या की कोशिश भी करते हैं।
तब मैं सोचने लगा, आदमी ये सब काम करता है, जो आजयबघर के जानवर करते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आदमी ने वह स्वतंत्रता खो दी, जो जरूरी थी? कहीं ऐसा तो नहीं है कि उसने खुला आकाश खो दिया, मुक्ति खो दी, सूरज खो दिया, और उसने कठघरे बना लिये, अपने हाथ से सीखचे खड़े कर लिये और उनके भीतर बंद हो गया! अन्यथा पागलपन, अन्यथा आत्मघात, अन्यथा इतनी बीमारियां, इतने मानसिक दुख संभव नहीं मालूम होते।
जंगल के जानवरों में कोई सेक्सुअल पर्वर्शन नहीं होता, कोई कामक-विकृति नहीं होती, लेकिन अजायबघर के जानवरों में वही विकृतियां पैदा हो जाती हैं, जो आदमी में हैं। जंगल में कोई जानवर मस्टरबेशन नहीं करता, हस्तमैथुन नहीं करता, लेकिन अजायबघर में जानवर हस्तमैथुन शुरू कर देते हैं। जंगल में कोई जानवर होमोसेक्सुअल नहीं होता, समलिंगी नहीं होता, लेकिन अजायबघर में जानवर होमोसेक्सुअल हो जाते हैं।
ये इतने हैरान करनेवाले तथ्य थे कि तब मुझे ऐसा लगने ही लगा कि कहीं न कहीं हमने भूल कर ली। आदमी का समाज नहीं बन पाया और अजायबघर बन गया है। क्योंकि सब तरह के लोग, सब तरह की विकृतियां, सब तरह के मानसिक विकार-जिसे हम समाज और सभ्यता कहते हैं-शायद वह स्वंय एक महारोग की तरह हमारे पीछे है। इसे अगर समझा जा सके, तो शायद बदला भी जा सकता है।
समझने की दिशा में दोत्तीन बातें सोचनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह सोचना जरूरी है कि कौन-से सीखचे हैं, जिन्होंने आदमी की स्वतंत्रता छीन ली है। दिखाई तो नहीं पड़ते। रास्ते पर मैं चलता हूं, तो मेरे चारों तरफ कोई सीखचे नहीं हैं। आप बैठे हैं, आपके चारों तरफ कोई सीखचे नहीं हैं। अच्छा होता कि सीखचे दिखाई पड़ते, तो शायद हम भ्रम में भी न पड़ते। लेकिन आदमी ने ऐसे सीखचे ईजाद किये हैं, जो अदृश्य हैं। और उन सीखचों के भीतर हम बंद होते चले गये हैं।
अब जैसे, राष्ट्र। राष्ट्र एक कारागृह है, जो अदृश्य है। अगर मैं हिंदुस्तान की सीमा पार करना चाहूं, तो मुझे सरकारी आज्ञा की जरूरत है। मैं सीमा को पार नहीं कर सकता। अगर मैं पाकिस्तान में प्रवेश करना चांहू, तो मुझे पाकिस्तान की सरकार की आज्ञा की जरूरत है। सीमा पर एक कठघरा खड़ा है, जिसके आर-पार कोई जा नहीं सकता। आखिर कारागृह में कैदी के लिये कौन-सी बात कारागृह है? जेल की दीवाल के भीतर तो वह भी स्वतंत्र है। जेल की दीवाल के बाहर नहीं जा सकता, वहां संतरी तैनात हैं। लेकिन जेल की दीवाल बहुत छोटी है, दिखाई पड़ती है। राष्ट्र की दीवाल बहुत बड़ी है, दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन वहां संतरी तैनात हैं। राष्ट्र की सीमा के बाहर कहीं कोई प्रवेश नहीं हो सकता। लेकिन राष्ट्र बहुत बड़ा कारागृह है, दिखाई नहीं पड़ता। उसके भीतर बड़ी स्वतंत्रता से हम घूम सकते हैं।
फिर हमने और छोटे कारागृह बनाये हैं--धर्मो का कारागृह है। राष्ट्र
एक है, लेकिन राष्ट्र के भीतर दस धर्म हैं, तो दस छोटे कारागृह हैं। उनकी भी अभी अपनी सीमाएं हैं, उनके बाहर शादी नहीं कर सकते, उनके बाहर मित्र को भोजन पर आमंत्रित नहीं कर सकते। उनके बाहर भोजन असंभव है। उनके बाहर हाथ फैलाकर दोस्ती बढ़ानी बहुत मुश्किल है। हिंदू का अपना कारागृह है, मुसलमान

का अपना कारागृह है। कभी-कभी एक-दूसरे के कारागृह में वे घुस जाते हैं, लेकिन दोस्ती से नहीं, दुश्मनी से। जैसे अहमदाबाद में हो गया। एक-दूसरे की दीवालों में घुस जाते हैं हत्या करने के लिये, मित्रता के लिये नहीं। जिनसे शादी करना वर्जित है, उनकी सिर्फ हत्या की जा सकती है। जिनके साथ दोस्ती नहीं बनायी जा सकती हैं, उनसे सिर्फ दुश्मनी ही बन सकती है। शत्रुता ही बन सकती हैं। कभी-कभी दीवालें टूटती हैं धर्मो की, लेकिन वे तभी टूटती हैं, जब एक-दूसरे के घर में घुस कर हत्या करने की इच्छा पैदा होती है।
हिंदू-मुसलमान के कारागृह हैं, जैन-बौद्ध के कारागृह हैं। तो उतने से
भी काम नहीं चलता। वे भी कारागृह हैं, फिर और छोटे कारागृह हैं-जैनों के दिगंबर और श्वेतांबर दोनों के कारागृह हैं। इतने से भी काम नहीं चलता, तो श्वेताबंर के भीतर भी तेरापंथी और स्थानकवासी के कारागृह हैं। उतने से भी काम नहीं बनता और हम तोड़ते चले जाते हैं और अगर हम गौर से देखें, तो सीमाओं के भीतर सीमाएं, कारागृह के भीतर कारागृह हैं। जैसे कभी जादूगर का डब्बा देखा हो, डब्बे के भीतर डब्बे, और उसके भीतर डब्बे, और डब्बे का कोई अंत ही नहीं होता। घबड़ाहट होनी शुरू हो जाती है।
ऐसे आदमी हजार तरह के कारागृह में बंद है। अगर वह अजायबघर का जानवर न
हो जाये, तो और क्या हो सकता है? अगर मनुष्य का समाज बनाना हो, अजायबघर नहीं, विक्षिप्त, पागल, रूग्ण बीमार लोगों का समूह नहीं, बल्कि जीवित, प्रेम से भरे हुए, करूणा से पूर्ण लोगों का समाज बनाना हो, तो हमें सब तरह के कारागृह तोड़ देने की तैयारी दिखानी जरूरी है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कारागृह का नाम क्या है। बड़े कारागृहवाले लोग छोटे कारागृह तोड़ने की कोशिश करते हैं। राष्ट्र का कारागृह मजबूत हो सके। जिसे राष्ट्र बड़ा कीमती मालूम पड़ता है, वह कहता है प्रदेशों के कारागृह तोड़ो ताकि राष्ट्र का कारागृह मजबूत हो सके।
लेकिन अब तक दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो कारागृह मात्र को तोड़ देने के लिए आतुर हैं; जो यह नहीं कहते कि छोटे कारागृह को बड़े कारागृह के लिये तोड़ो। जब तक हम इस भाषा में सोचेंगे, तब तक कारागूह कभी भी नहीं टूटने वाले हैं। तब तक आदमी कैद के बाहर नहीं हो सकता, सीखचों के बाहर नहीं हो सकता। एक बारगी मनुष्य को समझना होगा कि हम सीखचों में नहीं रहना चाहते- चाहे सीखचों का नाम हिंदू हो, चाहे सीखचों का नाम जैन हो, और चाहे सीखचों का नाम ब्राम्हण हो, शुद्र हो और चाहे सीखचों का नाम हिंदुस्तान हो, चीन हो, पाकिस्तान हो, हम सीखचों के भीतर नहीं रहना चाहते। सब तरह के सीखचे खतरनाक हैं, वे आदमी को पागल किये दे रहे हैं। क्यों? आखिर सीखचे आदगी को पागल क्यों किये देते हैं?
एक लिविंग स्पेस की जरूरत है हर आदमी को जिंदा रहने के लिये, एक विस्तार की जरूरत है। विस्तार जितना ज्यादा होगा, जीवन उतना मुक्त होगा। विस्तार जितना कम होगा, जीवन उतना सिकुड़ जायेगा। विस्तार जितना बड़ा होगा, उतनी ही आत्मा फैलेगी। विस्तार जितना छोटा होगा, आत्मा उतनी सिकुड़ जायेगी। एक बड़े मकान में रहने का मजा, और एक छोटी कोठरी में रहने को फर्क यही है कि एक छोटी कोठारी में हम सिकुड़ जाते हैं, एक बड़े मकान में हम फैल जाते हैं।
जितना विस्तार होगा, मनुष्य के जीवन की विस्तृत आधार शिला होगी, उतना आदमी की आत्मा विकसित होती है। लेकिन हम खंड-खंड में तोड़ते हैं। छोटे-छोटे खंड तोड़कर भी मन भरता नहीं, तो बहुत छोटे खंडो में तोड़ते हैं। और खंडों में तोड़तेत्तोड़ते आखिर में एक-एक आदमी खंड ही रह जाता है। एक-एक आदमी छोटा टुकड़ा रह जाता है। चारो तरफ सीमाएं आ जाती हैं और सब तरफ से बंद आदमी भीतर बेचैन और परेशान हो जाता है।
इसके दोहरे परिणाम होते हैं। पहला परिणाम तो यह होता है उसकी आत्मा कभी फैल नहीं पाती। और जब आत्मा न फैल पाये, तो पागल होना शुरू हो जाता है; विक्षिप्तता आनी शुरू हो जाती है। और दूसरा परिणाम यह होता है कि आत्मा को फैलाने के झूठे रास्ते खोजने पड़ते हैं। जब जिंदगी सब तरफ से बंधी हो, तो आत्मा को फैलाने के ऐसे रास्ते खोजने पड़ते हैं, जो अपने आप में गलत हैं।

जैसे आज-आज सारी दुनिया में कांशसनेस, चेतना को विस्तीर्ण करने के लिये ड्रग्स का उपयोग हो रहा है--एल.एसड़ी. का, मैस्कलीन का।
क्या आपको पता है, आदमी इतना ज्यादा सिकुड़ गया है कि अब वह बेहोश होकर
ही अनुभव कर पाता है कि मैं फला हुआ हूं! एल.एसड़ी. को वे कांशसनेस एक्सपैंडिंग ड्रग्स कहते हैं। वे कहते हैं कि एल. एस. डी. को लेने से आदमी की चेतना विस्तीर्ण हो जाती है थोड़ी देर को। छह घंटे को, दस घंटे को उसकी सब सीमाएं टूट जाती हैं, वह सारे जगत के साथ एक हो जाता है। चांद उसे अपने से एक मालूम पड़ता है। फूल उसे अपने भीतर खिलते हुए मालूम पड़ते हैं। सूरज दूर नहीं मालूम पड़ता है, निकट आ जाता है। और दुनिया की सब सीमाएं गिर जाती हैं।
एक तरफ हम सीमाएं बनाये चले जा रहे हैं, और आदमी इतना बेचैनी हो गया है
कि वह असीम को छूने के लिये एल.एसड़ी. जैसे ड्रग्स का, रासायनिक तत्वों का उपयोग करने को मजबूर हो गया है। धार्मिक लोग विरोध करते हैं एल.एसड़ी. का, लेकिन मजा यह है कि धार्मिक लोग जो सीमाएं खड़ी करते हैं, वे ही सीमाएं एल.एसड़ी. लेने को मजबूर कर रही हैं। एक तरफ आदमी पागल हुआ जाता है सीमाओं में बंध कर, दूसरी तरफ सीमाओं से ऊब कर बेहोशी के रास्ते खोज रहा है।
पूरी मनुष्य जाति का इतिहास अगर हम इस भांति देखें, तो हम हैरान होंगे
कि सारी मनुष्य जाति के लंबे इतिहास में हमने शराब, नशे, गांजे, अफीम और मैस्कलीन और सोमरस से लेकर एल.एसड़ी. तक, आदमी की चेतना विस्तार्ण हो, फैल सके, सीमाएं टूट सकें, इसके लिये नशे का उपयोग किया है। ऋग्वेद के ऋषियों से लेकर अमरीका के आधुनिक बीटल और हिप्पी तक आदमी की चेतना को फैलाने की खोज है।
लेकिन आदमी की चेतना फैल क्यों नहीं सकती है? हम चारों तरफ सीमाएं बांधें हुए हैं। वे सीमाएं हम तोड़ने को राजी नहीं हैं। अगर यही स्थिति रही, तो आनेवाले पचास वर्षो में सारी मनुष्य की चेतना बेहोशी के, रासायनिक द्रव्यों के नीचे दब जायेगी। उसके सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जायेगा-फैला हुआ अनुभव करने के लिये। लेकिन क्या यह उचित रास्ता है? क्या नशा लेकर चेताने के फैलने का अनुभव कोई आध्यात्मिक मूल्य रखता है? कोई भी आध्यात्मिक मूल्य नहीं रखता।
नशे में विस्तार अनुभव करने से कोई परिवर्तन नहीं होता है; लौटकर हम फिर संकुचित हो जाते हैं। लेकिन क्या हम सच में विस्तार अनुभव नहीं कर सकते हैं? हम सारी सीमाएं नहीं तोड़ सकते हैं? कौन रोके हुए है आदमी को सीमाएं तोड़ने से? लेकिन हमें ख्याल ही नहीं है। हमें ख्याल ही नहीं है कि हमारी बनायी हुई सीमाएं ही हमारी आत्मा को कारागृह में डाले हुए हैं और उनके भीतर हम बेचैन और परेशान हो गये हैं। वह परेशानी बहुत रूपों में प्रगट होती है।
आज सारी दुनिया में विद्रोह और बगावत है। सारी दुनिया में एक रिबेलियन है। नये बच्चे सारी पुरानी चीजों को तोड़ने को आतुर हैं। नये बच्चे सारे पुराने मूल्यों को मिटा देने के लिये विक्षिप्त हुए जा रहे हैं। कौन है जिम्मेवार इसके लिए? नये लड़के?-नहीं। अब तक की सारी मनुष्य जाति को नियम और सिद्धांत देनेवाले वे सारे लोग जिम्मेवार हैं, जिन्होंने आदमी को स्वतंत्र नहीं किया, परतंत्र किया है। इतने जोर से आदमी को बांध दिया है कि बंधन अब आखिरी सीमा पर पंहुच गये हैं और बच्चे अब उन बंधनों को तोड़ देने के लिए आतुर हो गये हैं।
लेकिन उन बच्चों को भी पता नहीं है कि वे क्या तोड़ रहे हैं। बस में आग लगाने से आदमी की चेतना के बंधन नहीं टूट सकते हैं। और न स्कूल के कांचो पर पत्थर फेंकने से आत्मा के बंधन टूट सकते हैं। और न ही शराब की बोतलों से, और न ही स्कूल के फर्नीचर को जलाने से वे बंधन टूट सकते हैं। वे बंधन बहुत अदृश्य हैं। वे हिंदू के, मुसलमान के, जैन के, ईसाई के बंधन बहुत भीतरी हैं, छिपे हुए हैं, वे दिखाई नहीं पड़ते। और उनको तोड़े बिना मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता।

क्या यह संभव नहीं हो सकता है कि मनुष्य सिर्फ मनुष्य हो? क्या यह संभव नहीं हो सकता है कि पृथ्वी-पूरी पृथ्वी हमारी माता हो, भारत-माता नहीं, पाकिस्तान-माता नहीं, पूरी पृथ्वी हमारी माता हो, क्या यह नहीं हो सकता? सच तो यही है कि पूरी पृथ्वी एक है। कहीं भी हिंदूस्तान और पाकिस्तान टूटे हुए नहीं हैं। कहीं कोई दरार नहीं है पृथ्वी पर, जहां से हिंदुस्तान अलग होता हो और पाकिस्तान शुरू होता हो। और जहां जर्मनी समाप्त होता हो और रूस शुरू होता हो। जमीन पर कहीं कोई रेखाएं नहीं हैं, सिवाय पागल राजनीतिज्ञों के नक्शों के अतिरिक्त। पृथ्वी कहीं भी बंटी हुई नहीं हैं। लेकिन राजनीतिज्ञ पृथ्वी को बांटे हुए हैं।
मैंने कहा, पहले तरह के बंधन, जिन्होंने आदमी को पागल किया है, धार्मिक लोगों न दिये हैं। और दूसरे तरह के बंधन, जितने पृथ्वी को खंडित किया है और आदमी को आदमी की दुश्मनी में खड़ा कर दिया है, वे राजनीतिज्ञों ने दिये हैं। धर्म के बंधन तो धीरे-धीरे शिथिल होते जाते हैं, क्योंकि पुरानी बीमारी है, उसके प्रति धीरे-धीरे हम जागते चले जाते हैं। लेकिन राजनीति के बंधन बहुत नये हैं। और अभी उनके प्रति जागने का हमें ख्याल ही नहीं है।
असल में धर्म-गुरू की जगह धीरे-धीरे राजनीतिज्ञ आ गया है। और धार्मिक मक्का-मदीना की जगह राजधानियां आ गई हैं। अब मक्का महत्वपूर्ण नहीं है, क्रेमलिन महत्वपूर्ण है-वह भी एक मक्का है नये तरह का! अब काशी महत्वपूर्ण नहीं है, पेकिंग महत्वपूर्ण है--वह भी काशी है नये लोगों की। अब गीता और कुरान उतने महत्वपूर्ण नहीं है, अब "दास कैपिटल" ज्यादा महत्वपूर्ण है--वह भी धर्म पुस्तक है नये धार्मिकों की। पुराने धर्मगुरु बदले हैं, उनकी जगह नये धर्मगुरु आये हैं। और नये धर्मगुरु और भी खतरनाक हैं। नये धर्मगुरू राजनीतिज्ञ हैं, जो आदमी को फिर बांट रहे हैं। जगह-जगह खंड-खंड किये दे रहे हैं। सारी पृथ्वी को उन्होंने टुकड़ों में बांट दिया है।
और इतने टुकड़े हैं ये, इन टुकड़ो के कारण इतने युद्ध हैं, इतने युद्ध हैं, इतने युद्ध हैं, इन युद्धों के कारण आदमी की जिंदगी में शांति और आनंद के फूल खिलने असंभव हो गये हैं। पिछले तीन हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध हुए हैं। प्रतिवर्ष पांच युद्धों का अनुपात है, कहीं न कहीं जमीन के किसी कोने पर युद्ध चल रहा है। कहीं न कहीं आग भड़की है-चाहे वियतनाम हो, चाहे कोरिया हो, चाहे कश्मीर हो। कहीं न कहीं आग जलेगी, कहीं न कहीं आदमी जलता रहेगा। जमीन के किसी न किसी कोने पर उपद्रव और घाव बनते ही रहेंगे। अब तक ऐसी नहीं हुआ है कि एक दिन को भी शांति हो पृथ्वी पर। कहीं न कहीं उपद्रव है!
किसके कारण है? कौन तोड़ता है आदमी को। कौन आमने-सामने खड़ा कर देता है? राजनीतिज्ञ तोड़ रह है। लेकिन राजनीतिज्ञ तोड़ने को मजबूर है, क्योंकि बिना तोड़े लोगों पर राज्य नहीं किया जा सकता।
हिंदुस्तान में अंग्रेजों की हुकूमत थी, तो हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ लोगों को समझाते थे कि अंग्रेजों का नियम है-डिवाइड एण्ड रूलत्तोड़ो और राज्य करो। लेकिन कोई पूछे कि सारी दुनिया के राजनीतिज्ञों का नियम क्या है? उनका भी नियम वही हैत्तोड़ो और राज्य करो। जब तक पृथ्वी खंड-खंड में टूटी है, तब तक पृथ्वी पर हजारों तरह के राजनीतिज्ञों का राज्य होगा। जिस दिन मनुष्य एक हो जायेगा, उस दिन इन राजनीतिज्ञों को विदा हो जाना पड.ेगा। मनुष्यों की एकता राजनीतिज्ञों की हत्या सिद्ध होगी, इसलिए राजनीतिज्ञ मनुष्यों को एक न होने देगा।
हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अगर देश के दुश्मन न हों, तो झूठे दुश्मन पैदा करो, क्योंकि जब तक तुम दुश्मन पैदा नहीं करते, तब तक तुम महान नेता नहीं बन सकते हो। महान नेता बनने के लिए युद्ध की भूमिका जरूरी है। अगर सच्चे दुश्मन मिल जाएं, तो बहुत ठीक, अन्यथा झूठे दुश्मन पैदा करो। लेकिन दुश्मन जरूरी है। क्योंकि जब दुश्मन होता है, तब जनता नेता के पीछे खड़ी हो जाती है--घबड़ाहट में, भय में, असुरक्षा में, इनसिक्योरिटी में। वह कहती है, हमें बचाओ। और जो उसे बचाता है, वह महान हो जाता है। इसलिए सब युद्ध बड़े नेताओं को पैदा करते हैं।

अगर बड़ा नेता होना हो, तो युद्ध बहुत जरूरी है। शांति के समय में बड़े नेता पैदा नहीं होते। बड़े नेता के पैदा होने के लिए संघर्ष जरूरी है, युद्ध जरूरी है, हिंसा जरूरी है, हत्या जरूरी है। जितनी हत्या होगी, जितनी हिंसा होगी, उतना बड़ा नेता प्रकट होगा। शांति के समय में बड़ा नेता प्रकट नहीं होता। अगर शांति स्थाई चल जाए, तो नेता एकदम फेड आउट हो जाएंगे, विदा हो जाएंगे, उनको कोई पूछेगा ही नहीं। उनकी जरूरत ही तभी है।
रास्ते पर, चौराहे पर एक पुलिसवाला खड़ा है। वह पुलिसवाला इसलिए खड़ा
है कि कहीं चोर है। अदालत में एक मजिस्ट्रेट बैठा है, वह इसलिए बैठा है कि कहीं चोर है। अगर चोर विदा हो जाएं, तो चोरों के विदा होते ही अचानक चौरस्ते का पुलिसवाला भी विदा हो जायेगा। चोरों के विदा होते ही मजिस्ट्रेट विदा हो जायेगा। इसलिए मजिस्ट्रेट ऊपर से चोरों को सजा दे रहा है, भीतर से भगवान से प्रार्थना करता है कि रोज आते रहना। स्वाभविक है। उसका धंधा तो चोरों पर है। उसकी जिंदगी चोरों पर है।
राजनीतिज्ञ ऊपर से कहता है कि शांति चाहिए। कबूतर उड़ाता है, शांति के कबूतर! लेकिन भीतर से युद्ध की कामना करता है। युद्ध चाहिए। युद्ध न हो, तो राजनीतिक नेता की कोई जगह नहीं है। युद्ध न हो, तो राजनीति की ही कोई जगह नहीं है। असल में युद्ध से ही राजनीति पैदा होती है। फिर अगर बड़ा युद्ध न चलता हो तो छोटा युद्ध चलाना पड़ता है। अगर मुल्क के बाहर कोई लड़ाई न हो, तो मुल्क के भीतर लड़ाई चलानी पड़ती है। अगर मुल्क के भीतर भी न हो, तो एक ही पार्टी को दो हिस्सों में तोड़कर लड़ाई चलानी पड़ती है!
बड़ा नेता लड़ाई में पैदा होता है। छोटे नेता शांति में जीते हैं। छोटे नेता कभी बड़े नहीं हो सकते हैं, अगर लड़ाई चलनी चाहिए। लड़ाई चलनी ही चाहिए किन्हीं भी तालों पर। हजार-हजार तलों पर लड़ाई चलनी चाहिए। लड़ाई नेता को बड़ा करती है। जनता को आतुर करती है, जनता की आंखों को उठाती है, नेता को देखने के लिए। इसलिए नेता निरंतर नई लड़ाई की चेष्टा में संलग्न है।
और मजा यह है कि रोज मंच पर खड़े होकर कहता है कि शांति चाहिए, एकदम चाहिए। मनुष्य इकट्ठे हों, सब एक हों। इधर मंच पर यह कहेगा। मंच के पीछे सारे उपाय करेगा, जिनसे मनुष्य एक न हो पाये, जिनसे आदमी कभी इकट्ठा न हो पाये, जिनसे पृथ्वी कभी इकट्ठी न हो पाये। इसकी पीछे कोशिश चलेगी, लेकिन यह हम समझ सकते हैं।
एक डाक्टर है, वह मरीज का इलाज करता है और मरीज की तरफ, सब तरफ से कोशिश करता है कि मरीज ठीक हो जाये। डाक्टर मरीज हो ठीक करने के लिए है। लेकिन पता है कि जब महामारी फैलती है, प्लेग फैलती है, या जब फ्लू फैलता है, तो डाक्टर आपस में कहते हैं कि "सीजन चल रह है!" डाक्टरों का सीजन तो तभी आता है, ऋतु तभी आती है धंधे की, जब फ्लू फैले, प्लेग फैले, मलेरिया फैले, लोग बड़े पैमाने पर बीमार हों! इधर डाक्टर इलाज कर रहा है मरीज का, उधर प्रार्थना कर रहा है कि बीमारी कैसे बढ़े! और पैसे वाले बीमार का ठीक हो जाना इसलिए बहुत मुश्किल हो जाता है। गरीब बीमार को ज्यादा देर बीमार रखने में डाक्टर का कोई हित नहीं है। पैसे वाले बीमार का ठीक हो जाना मुश्किल हो जाता है। अक्सर तो पैसे वाले बीमार ही बने रहते हैं। क्योंकि जितनी देर पैसे वाला बीमार रहे, उतने ही हित में है डाक्टर के। अब ऊपर से डाक्टर दिखता है बीमारी से लड़ रहा है, और भीतर से वह बीमारी के लिए प्रार्थना कर रहा है।
इसलिए ऊपर मंचों पर जो चेहरे दिखाई पड़ते हैं, वे मंच के पीछे वही नहीं हैं, यह ध्यान में रखना जरूरी है। मंच पर चेहरे बिल्कुल बनावटी हैं। मंच पर वे कुछ और कहते हैं, और सौ में निन्यानबे मौके यह हैं कि मंच पर वे जो भी कहते हैं, ठीक उससे उल्टा मंच की पीछे करते होंगे। जो भी शांति की बातें चलती हैं, उनके पीछे युद्ध का इंतजाम चलता है। इसलिए बड़े आश्चर्य की बात है कि दुनिया के सारे युद्ध शांति के लिए होते हैं! सब युद्ध शांति के लिए होते हैं। वे कहते हैं, हम इसलिए लड़ रहे हैं, ताकि दुनियां में शांति हो सके! लड़ना जरूरी है; शांति की रक्षा के लिए युद्ध जरूरी है। हिटलर भी शांति की रक्षा के लिए लड़ते हैं और चर्चिल भी। रूजवेल्ट भी और स्टैलिन भी शांति

के लिए लड़ते हैं। हिंदुस्तान भी और पाकिस्तान भी, सभी शांति के लिए लड़ते हैं।
लेकिन राजनीतिज्ञ की जिंदगी अशांति पर निर्भर है। इसलिए राजनीतिज्ञ शांति चाह नहीं सकता। और अगर दुनिया को शांति चाहनी हो, तो राजनीतिज्ञ को विदा देना जरूरी होगा। वह हट जाना चाहिए, उसकी कोई जगह नहीं होनी चाहिए। लेकिन आज उसी की जगह है। वही सब कुछ है। उसे हम सारी ताकत दे रहे हैं। और वह हमारी अशांति का बुनियादी आधार है। हम उसको ही भोजन खिला रहे हैं। हम उसका ही सम्मान कर रहे हैं और फूलमालाएं पहना रहे हैं। क्योंकि वह शांति की बातें करता है। लेकिन शांति की बातों का शांति से कोई भी संबध नहीं है।

नोटः नीचे का हिस्सा बुक में नहीं है--प्लीज चेक

मैंने सुना है, एक रात एक होटल में बड़ी देर तक कुछ मित्र भोजन करते रहे
और शराब पीते रहे। जब वे रात विदा होने लगे, कोई एक बज गया था, तो होटल के मैनेजर ने कहाः ऐसे भले लोग अगर रोज आते रहें, तो हमारी जिंदगी के चांद चमक जाएं। विदा होते मेहमानों में से जिसने पैसे चुकाए थे, उसने कहा, भगवान से प्रार्थना करो कि हमारा धंधा ठीक चलता रहे, तो हम रोज आएं। उस मैनेजर ने कहाः भगवान से रोज प्रार्थना करूंगा तुम्हारा धंधा ठीक चले; लेकिन यह तो बता जाओ कि तुम्हारा धंधा क्या है? उसने कहाः यह मत पूछो, अन्यथा प्रार्थना करना जरा मुश्किल पड़ेगा। फिर भी, उसने कहाः अब और मुश्किल में डाल दिया, तुम बता तो जाओ कम से कम तुम्हारा धंधा क्या है, हम प्रार्थना करेंगे। उस आदमी ने कहाः मैं मरघट पर लकड़ियां बेचने का धंधा करता हूं। हमारा धंधा रोज चलता रहे, दस-पांच लोग रोज मरघट पहुंचते रहें तो हम रोज आते रहें।
किसी का धंधा मरघट पर लकड़ी बेचने का भी है। वह आपकी प्रतीक्षा कर रहा
है, वह मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। वह प्रतीक्षा कर रहा है कि कब हम मरें। उसकी दुकान नहीं चल रही है।
राजनैतिक का धंधा बिल्कुल मरघट पर लकड़ियां बेचने का है। वह प्रतीक्षा
कर रहा है कब युद्ध हो, कब लोग मरें, कब लोग हिंसा हो, कब हिंसा हो कि वह आए और लोगों को समझाए कि शांति चाहिए। इधर वह युद्ध भी करवाएगा, दंगे भी करवाएगा, उधर दंगे को मिटाने के लिए अमन-कमेटी, शांति-कमेटी भी बनवाएगा। वही आदमी संघर्ष करवाएगा, वही आदमी शांति के लिए आकर व्यवस्था भी करेगा। ये दोहरे चेहरे हम कब पहचान पाएंगे? अगर हम नहीं पहचान पाएंगे तो आदमी
की हालत रोज बुरी से बुरी होती चली जा रही है। इस बात को समझ लेना बहुत जरूरी है कि जो मुल्ला, जो पंडित झगड़े करवाता है वही फिर अमन-कमेटी का मेंबर होता है। फिर वही मस्जिद में और मंदिरों में प्रार्थनाएं करता है। वह प्रार्थनाएं करता है कि सबमें शांति होनी चाहिए। और कोई पूछे कि आदमी में अशांति कौन करवा रहा है? मंदिर और मस्जिद के अलावा कौन अशांति करवा रहा है। मंदिर और मस्जिद अशांति करवाएंगे। मंदिर का पुजारी समझाएगा कि गऊ माता है, इसलिए गऊ की अगर पूंछ कट जाएगी तो दंगे हो जाएंगे। और फिर मंदिर का पुजारी समझाएगा कि शांति रखो, अधार्मिक आदमी हो गए हो, धार्मिक आदमी सदा शांत रहता है। मस्जिद का आदमी समझाएगा कि यह मोहम्मद साहब का बाल है, यह बाल भी बड़ा कीमती है। यह बाल भी हजरत बाल है, यह कोई साधारण बाल नहीं है। यह बाल अगर चोरी चला जाएगा तो सैकड़ों लोगों की हत्या हो सकती है लेकिन यह बाल बचाना पड़ेगा। और जब दंगे-फसाद हो जाएंगे, आग लग जाएगी और लाशें बिछ जाएंगी, तो वही मौलवी समझाएगा कि मोहम्मद का तो संदेश है शांति, सब शांति से रहो। इस्लाम का तो मतलब ही शांति है। सबको शांति से रहना चाहिए।
ये दोहरे चेहरे हम कब पहचानेंगे? राजनैतिक युद्ध करवाएगा और शांति की बातें करता रहेगा। अगर हम ये दोहरे चेहरे नहीं पहचानते, अगर ये डबल रोल हमारे ख्याल में नहीं आता, तो आदमी का समाज कभी भी समाज नहीं बनेगा, यह अजायबघर की बना रहेगा। लेकिन ये चेहरे पहचाने जा सकते हैं। इन चेहरों के भीतर खोज-बीन की जा सकती है।
आखिर राजनैतिक इतना युद्ध में क्यों उत्सुक है?

सभी महत्वाकांक्षी युद्ध में उत्सुक होते हैं। क्योंकि महत्वाकांक्षा गहरे में युद्ध की जन्मभूमि है। एंबीशस सारे लोग, जिनकी महत्वाकांक्षा है, युद्ध के आकांक्षी होंगे। क्योंकि शांति में महत्वाकांक्षा के पौधे को बढ़ने का कोई उपाय नहीं है। वह अशांति में ही बढ़ता है, अशांति उसके लिए खाद का काम करती है। और राजनैतिक महत्वाकांक्षी अंतिम सीमा का है। एंबीशस पॉर एक्सिलेंस। उसके आगे फिर और कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। वह महत्वाकांक्षा से मरा जा रहा है। उसे कुछ होना है, उसे समबडी होना है, उसे कुछ होकर दिखाना है। और इस कुछ होने के लिए वह न मालूम कितने जाल रचेगा-सिद्धांत के, आइडियालॉजी के, गरीबों के, समाजवाद के हित के, मंगल के, लोग-कल्याण के, सारी बातें करेगा। और पीछे सिर्फ एक बात है-वह दूसरा चेहरा पहचान लेना जरूरी है, अन्यथा बड़ी मुश्किल है। वह दूसरा चेहरा यह है कि उसे कुछ होना है। वह समाजवाद की सीढ़ियों से कुछ हो, कि साम्यवाद की सीढ़ियों से कुछ हो, कि वह गांधीवाद की सीढ़ियों से कुछ हो, यह सवाल दूसरा है, ये सीढ़ियां बेमानी हैं, उसे कुछ होना है, उसे समबडी होने की मंजिल तक पहुंचना है। और एक दफा वह मंजिल पर पहुंच जाए तो वह सब सीढ़ियां पीछे गिरा देता है, क्योंकि फिर उन्हीं सीढ़ियों से दूसरे लोग भी आ सकते हैं। एक दफा उसे पहुंच जाने दो, फिर पहला काम वह उन सीढ़ियों को गिराने का करता है जिनसे वह पहुंचा था।
स्टैलिन साम्यवाद के नाम पर शक्ति में पहुंचा। फिर उसने सीढ़ियां गिरानी शुरू कीं। कहा तो यह जाता है कि लेनिन को ही उसने जहर देकर मारा। पक्का नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्टैलिन जैसे लोग जब जहर देते हैं तो पता लगाना बहुत मुश्किल बात है। लेकिन लेनिन के अंतिम वक्तव्य और पत्र यह कहते हैं कि जरूर कुछ गड़बड़ हुई है। लेनिन को अचानक मार डाला गया है। धीरे- धीरे जहर दिया गया है। लेनिन जिसकी सीढ़ियों से सिलिन चढ़ा उसे गिरा देना पड़ा।
ट्राटस्की को रूस छोड़ कर भाग जाना पड़ा। ट्राटस्की दूसरी सीढ़ी जिससे क्रांति ऊपर गई। और मैक्सिको में स्टैलिन के आदमी ने हथौड़ा मार कर उसकी खोपड़ी तोड़ दी, उसकी हत्या कर दी। रूस में उसका कुत्ता छूट गया था ट्राटस्की का, तो स्टैलिन के लोगों ने उसके कुत्ते को भी गोली से भून कर और सड़कों पर घसीटा। क्योंकि कुत्ते को भी... ट्राटस्की का कुत्ता, उसको भी नहीं बचने देना चाहिए। कुत्ते पर भी तो कोई चढ़ सकता है, सीढ़ी बन सकता है। ट्राटस्की का कुत्ता! गांधीजी की खड़ाऊं सीढ़ी बन सकती हैं तो ट्राटस्की का कुत्ता क्यों सीढ़ी नहीं बन सकता। चढ़ने के लिए कोई भी चीज काम दे सकती है। उसको को गोली में भून डाला।
स्टैलिन ने फिर करीब अंदाजन साठ लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या
की रूस में। एक करोड़ पूंजीपति रूस में कहां? दुनिया के किसी मुल्क में नहीं है। तो एक करोड़ कौन से लोग मारे? इसमें मजदूर भी हैं, इसमें गरीब भी हैं।
अब बड़े मजे की बात है जिन गरीबों के लिए क्रांति हुई उन्हीं गरीबों को गोली से भून दिया गया। फिर सीढ़ियां तोड़ देनी पड़ीं। फिर सब सीढ़ियां तोड़ देनी पड़ीं। स्टैलिन ने एक-एक आदमी का सफाया किया, एक-एक सीढ़ी का पहिया तोड़ा। तोड़ता चला गया।
स्टैलिन के मरने के बाद ख्रुश्चेव एक सभा में बोल रहा था, तो सभा में उसने कहा कि स्टैलिन ने इतनी-इतनी हत्याएं कीं, इस-इस तरह से समाजवाद को नुकसान पहुंचाया। एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि आप भी तो स्टैलिन के साथ जिंदगी भर थे, आपने पहले क्यों नहीं कहा? तो ख्रुश्चेव न कहा कि महाशय, जरा खड़े हो जाइए, ठीक से मैं चेहरा देख लूं, आपका नाम क्या है? वह आदमी खड़ा नहीं हुआ, फिर दुबारा बोला भी नहीं उस भीड़ में। ख्रुश्चेव ने कहाः आप चुप क्यों हो गए? जिस वजह से आप चुप हैं उसी वजह से में भी चुप रहा। क्योंकि यह चेहरा अगर दिखाई पड़ जाए, तो कल फिर बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा। इसलिए मुझे भी चुप रहना पड़ा। क्योंकि एक दफा बोलता तो हमेशा के लिए। जब लेनिन और ट्राटस्की न बचते हों, तो बेचारे ख्रुश्चेव के बचने की क्या उम्मीद थी; चुप रह कर बच सकता है।

सारी दुनिया में ऐसा चलता है-सीढ़ियां तोड़नी पड़ती हैं; जिन सीढ़ियों से आदमी चढ़ता है। लेकिन यह चढ़ने वाले लोगों की आकांक्षा सिर्फ कुछ होने की है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे कौन सी सीढ़ियों का उपयोग करते हैं। वे हमेशा उन सीढ़ियों का उपयोग करते हैं जिनकी पापुलर अपील है, जिन बातों के लोग प्रियता हैं। गरीब के सहारे, गरीब के कंधे पर बहुत लोग चढ़ते हैं। क्योंकि गरीब के मन में बड़ी पीड़ा है। और कोई भी कहे कि हम तुम्हारे लिए खड़े हैं। लेकिन आज तक इस पृथ्वी पर गरीब के लिए कोई भी खड़ा हुआ नहीं है। गरीब ही अपने लिए जब तक खड़ा नहीं होता, तब तक कोई गरीब के लिए खड़ा नहीं हो सकता है। तब तक उसे शोषण के नये जाल मिलेंगे।
राजनीतिज्ञ की मौलिक आकांक्षा स्वयं के अहंकार की तृप्ति है। असल में जिस दिन अहंकार की तृप्ति की दौड़ न रह जाएगी, उस दिन राजनीतिज्ञ नहीं बचेगा। अहंकार की गहरी दौड़ है कि मुझे कुछ होना है, और यह दौड़ राजनीतिज्ञ को है ऐसा नहीं, राजनीतिज्ञ हमारे बीच जो सबसे ज्यादा दौड़ से भर जाते हैं वे लोग हैं। और थोड़े लोग दूसरी तरह दूसरी दिशाओं में दौड़ करते रहते हैं। असल में हम पहले दिन ही बच्चे को राजनीतिज्ञ होना सिखाते हैं। आपका लड़का पहले दिन स्कूल जाता है, और आप कहते हैं, पहले नंबर आना है। आपने राजनीति का जहर बोना शुरू कर दिया। इस बच्चे को पता ही नहीं, न आपको पता है, न इसके शिक्षक को पता है कि राजनीतिज्ञ पैदा होने लगा। पहले नंबर आना है! बच्चे में जहर हमने डालना शुरू कर दिया, पाय.जन बो दिया उसके खून में। अब वह जिंदगी भर कोशिश करेगा पहले नंबर होने की। और अगर बहुत पागल हो गया पहले नंबर में, तो राजनीतिज्ञ हो जाएगा। अगर थोड़ा पागल रहा, तो दूसरी दिशाओं में भी थोड़ी-बहुत तृप्ति मिल सकती है। चित्रकार हो सकता है, मूर्तिकार हो सकता है, धर्मगुरु हो सकता है। लेकिन अगर डोर जोर से पकड़ी और चरम हो गई तो राजनीतिज्ञ के सिवाय और कुछ होने का उपाय नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को नंबर एक होना है।
हम यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर हम सारे लोगों को एक गोल घेरा बना दिया जाए और कहा जाए यह रहा राष्ट्रपति का सिंहासन और सबको इस पर पहुंच जाना है, तो यह हॉल अभी पागल हो जाए, अभी हम सब दौड़ने लगें। और उस एक जगह पर जो पहुंच जाए उसका भी टिकना मुश्किल है क्योंकि बाकी सारे लोग धक्के दे रहे हैं उसको हटाने के। जो नहीं पहुंच पाया वह अपनी जगह नहीं टिक सकता, क्योंकि उसे पहुंचना है। जो पहुंच गया वह भी नहीं टिक सकता, क्योंकि दूसरों को उसे हटाना है। और यह हॉल अगर पागल हो जाए तो आश्चर्य है!
आदमी की जिंदगी अजायबघर में खड़ी हो गई है, क्योंकि हम सब नंबर एक होने
की पागल दौड़ में लगे हुए हैं। वह धन की दौड़ हो, यश की दौड़ हो, पद की दौड़ हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक हम आदमी को नंबर एक होने की दौड़ से मुक्त नहीं करते हैं तब तक आदमी स्वस्थ नहीं हो सकता है।
इसलिए दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूंः सीमाएं टूटनी चाहिए सब भांति की। और मनुष्य की महत्वाकांक्षा के आमूल आधार गिरा दिए जाने चाहिए। महत्वाकांक्षा है तो नये रूपों में प्रकट होती रहेगी। महत्वाकांक्षा बहुत अजीब है। महत्वाकांक्षा यह कहती है कि मुझे कुछ होना है। जब कि मजे कि बात यह है, जो मैं हूं वह मैं हूं, होने का सवाल नहीं है। होने की बात ही गलत है। मैं जो हूं वह हूं। और हर आदमी अलग-अलग है। और जिंदगी बड़ी अनूठी है, यहां एक-एक आदमी अद्वितीय है, बेजोड़ है। मैं मैं हूं, आप आप हैं। और कौन कहता है कि मुझे आप होना है और आपको मुझे होना है। अगर ऐसी बात पैदा होगी, तो हम पागल हो जाएंगे। दुनिया में दो आदमियों के अंगूठे के निशान एक से नहीं हैं तो दो आदमियों की आत्माएं कैसे एक हो सकती हैं। दुनिया में दो आदमियों के हाथ की रेखाएं समान नहीं हैं तो दो आदमियों की जिंदगी एक सी कैसे हो सकती है। एक-एक आदमी बेजोड़ है। लेकिन हमारा पुराना पूरी मनुष्य-जाति का इतिहास तुलना करना सिखाता है कि दूसरे से आगे, दूसरे जैसे, दूसरे से ऊपर, और कोई भी नहीं कहता कि अपने जैसे होना। जब तक हम बच्चों को यह न सिखा सकेंगे कि प्रत्येक अपने जैसा हो, कभी दूसरे जैसे होने की दौड़ में न पड़े, तब तक राजनीति से छुटकारा नहीं हो सकता। लेकिन हम किसी बच्चे को स्वीकार नहीं करते जैसा वह है। हम स्वीकार ही नहीं करते। हम तो कहते हैं

उसे किसी और जैसे होना है। हम बच्चे को कहते हैंः राम बनो, बुद्ध बनो, कृष्ण बनो, गांधी बनो, रवींद्र बनो, विवेकानंद बनो, कोई बनो, लेकिन भूल कर खुद मत बनना, बस इतना भर छोड़ देना, और कोई भी बनो।
अब बड़े मजे की बात है, उस बच्चे ने क्या कसूर किया है कि विवेकानंद बने? और विवेकानंद किस जैसे बने थे? कोई पूछे? विवेकानंद अपने जैसे बने। और इस बच्चे की कौन सी भूल है कि विवेकानंद जैसा बने? विवेकानंद राम जैसे नहीं बने, और न कृष्ण जैसे बने, और न बुद्ध जैसे बने। और बुद्ध किसी राम की फिकिर नहीं किए और किसी कृष्ण की फिकिर नहीं किए, वे अपने जैसे बने।
इस पृथ्वी पर जो थोड़े से नाम हमें सुरभित और सुगंधित मालूम पड़ते हैं,
वे वे लोग हैं जो अपने जैसे बने। और बाकी सारी मनुष्यता सौरभ खो देती है, सुगंध खो देती है, क्योंकि दूसरे जैसे बनने की दौड़ में पड़ जाती है। दूसरे जैसे बनने की दौड़, दूसरे के पद पर होने की दौड़, दूसरे के मकान जैसा मकान, दूसरे के कपड़े जैसे कपड़े, दूसरे के पद जैसा पद। इसमें छोटे से चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक सब संलग्न हैं। इस दौड़ से जिंदगी सुगंध को, सौंदर्य को उपलब्ध नहीं हो पाती। और जब कोई आदमी अपने भीतर सुगंध से हीन हो जाता है और अपने भीतर सौंदर्य से हीन हो जाता है और कुरूप हो जाता है, और जब कोई आदमी अपने जिंदगी के फूलों को खिलाने में असमर्थ हो जाता है, तब, तब वह दूसरों के फूल न खिल पाएं इसकी कोशिश में लग जाता है। तब वह इस कोशिश में लग जाता है कि मैं तो कुछ हो नहीं पाया अब मैं किसी दूसरे को कुछ न होने दूं, इतना भी काफी तृप्ति होगी। जो आदमी भीतर दुखी हो जाता है वह दूसरे के सुख को मिटाने की चेष्टा में संलग्न हो जाता है। जो आदमी भीतर अशांत और बेचैन हो जाता है उसका फिर एक ही सुख रह जाता है कि कोई दूसरा शांत न हो जाए। और तब जिंदगी में हम अपने सुख की यात्रा छोड़ कर दूसरे को दुखी करने की यात्रा में लग जाते हैं। हम सब इस यात्रा में लगे हुए हैं। हम सबके हाथ एक-दूसरे की गर्दन पर हैं।
चैस्सटन एक सुबह एक बगीचे में था। और बर्नार्ड शॉ और वे दोनों घूम रहे थे। तो बर्नार्ड शॉ ने ऐसे ही चैस्सटन से पूछा। चैस्सटन बहुत मोटा आदमी था। बर्नार्ड शॉ तो दुबले-पतले थे। वह अपने दोनों खीसों में हाथ डाले घूम रहा था। बर्नार्ड शॉ ने ऐसे ही पूछा कि क्या यह हो सकता है कि एक आदमी अपने ही खीसों में हाथ डाले जिंदगी गुजार दे? चैस्सटन ने कहाः हो सकता है, हाथ अपने होने चाहिए, खीसे दूसरे के।
यह उसने मजाक में ही कहा था, लेकिन यह सच्चाई है। हाथ हमारे हैं, खीसे सदा दूसरों के हैं। हम सब दूसरों के खीसों में हाथ डाले हैं। सबके हाथ दूसरों के खीसे में हों, और सबके हाथ दूसरों की गर्दनों पर हों, और सबके हाथ दूसरे का सुख छीनने में लगे हों, तो जिंदगी सुखी हो सकती है? तो जिंदगी दुखी हो जाएगी, कुरूप हो जाएगी, बेमानी हो जाएगी, हत्यारों का एक समूह हो जाएगा, बेईमानों का एक समूह हो जाएगा। और जहां इतनी बेईमानी, इतनी हत्याएं, इतनी चोरी, इतनी घृणा और इतनी हिंसा होगी, और इतना दूसरों को दुख पहुंचाने की आकांक्षा होगी, वहां एकाध आदमी भी कैसे सुखी और शांत हो सकता है। बहुत कठिन हो जाएगी यह बात। उतनी ही कठिन हो गई है। और इसलिए जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है, सभ्यता यानी दूसरों के खीसों में हाथ बढ़ते हैं, दूसरों की गर्दन पर हमारी अंगुलियां कसती चली जाती हैं। जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है वैसे-वैसे आदमी पागल होता चला जाता है। यह संभव है कठिन नहीं कि हजार, दो हजार वर्ष में ऐसा न हो कि अभी हमको पागलों को कारागृह में बंद करके रखना पड़ता है, फिर अच्छे आदमियों को बंद करके रखना पड़े। क्योंकि पागल इतने ज्यादा हो जाएं कि उनके लिए कारागृह बनाना मुश्किल हो, और अच्छे आदमी इतने कम रह जाएं कि उनको बचाने का सवाल हो जाए। यह हो सकता है। यह बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि धीरे-धीरे बात बिगड़ती ही चली जाती है। लेकिन हम पागलपन को अच्छे-अच्छे नाम देते हैं। हम महत्वाकांक्षा पर अच्छे-अच्छे लेबल लगाते हैं। दोहरा काम हो जाता है, फिर भूल हो जाती है, हम पागलपन को अच्छा नाम देते हैं। अगर मैं आपको छुरा मार दूं तो मैं पागल हूं, लेकिन अगर मैं कहूं कि मैं हिंदू हूं और आप मुसलमान हैं, फिर मैं पागल नहीं हूं, यह बड़े मजे की बात है। मैं एक बच्चे को आग में जला दूं तो मैं पागल हूं, लेकिन अगर

बच्चा हिंदू है और मैं मुसलमान हूं तो फिर मैं पागल नहीं हूं। क्या फर्क पड़ेगा बच्चे के आग में जलने से कि वह हिंदू है या मुसलमान। बच्चा आग पर जलेगा हर हालत में। और बच्चे के प्राणों में वही पीड़ा होगी, मुसलमान होने से कम न होगी, हिंदू होने से ज्यादा न होगी। बच्चा बच्चा है और बूढ़ों के पाप के लिए उसको फल दिया जा रहा है। उस बच्चे को जलने में वही पीड़ा होनी है, और इस जगत में वही कुरूप घटना घट रही जो बच्चे को जला रहा है, वह पत्थर हुआ जा रहा है भीतर, वह हिंदू हो या मुसलमान इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अगर मैं सीधा-सीधा बच्चे को जला दूं, तो मैं पागल समझा जाऊंगा, हत्यारा। लेकिन अगर में मुसलमान के बच्चे को जलाऊं, तो मेरा जुलूस भी निकाला जा सकता है कि यह आदमी बहुत धार्मिक है। हम पागलपनों को नाम देते हैं!
मेरे पड़ोस में एक आदमी रहते हैं, वे नल पर पानी भरते हैं, तो अगर कोई स्त्री निकल जाए, तो वे फिर से बर्तन को धोते हैं, कोई स्त्री दिख जाए, फिर से बर्तन को धोते हैं। कभी-कभी सौ दफे भी ऐसा करना पड़ता है। क्योंकि सड़क है, किसी स्त्री पर रोक तो लगाई नहीं जा सकती। और गरीब आदमी है वह, तो घर में कोई नल नहीं है, चौरस्ते के नल पर पानी भरना पड़ता है। लेकिन स्त्री दिख जाए तो उनका घड़ा जो है अपवित्र हो जाता है, तो वे उसको धो डालते हैं। लेकिन मोहल्ले के लोग उनको धार्मिक आदमी कहते हैं कि वे बहुत धार्मिक आदमी हैं। कई लोग उनके पैर भी छूते हैं। मैंने एक दिन पूछा कि इनका इतना आदर किसलिए? उन्होंने कहाः आपको पता नहीं, ये बहुत धार्मिक आदमी हैं। अगर स्त्री निकल जाती तो ये घड़े को फिर से धोते हैं। अब यह आदमी पागल होता, इसको पागलखाने में रखना चाहिए, इसका इलाज होना चाहिए। लेकिन यह आदमी धार्मिक हो गया। क्योंकि दस पागल मिल गए हैं जो कह रहे हैं कि यह बहुत अदभुत घटना है यह घड़े को धोना। यह रिचुअल पागल का है। घर में एक आदमी माला फेर रहा है, तो हम कहते हैं, धार्मिक आदमी है। लेकिन सोचें, अगर माला फेरना धार्मिक न होता हमारे ख्याल में और अचानक घर में एक आदमी गुरियों पर ऐसा हाथ फेरने लगता आंख बंद करके, तो हम डाक्टर को खबर करते कि इस आदमी को क्या हो गया है? इसको क्या हो गया, यह आंख बंद करके गुरिए सरका रहा है? लेकिन हम नहीं कहेंगे यह डाक्टर को बुला कर क्योंकि हमने यह मान लिया, इस पर हमने एक लेबल लगाया है जो धार्मिकता का है।
तिब्बत में उन्होंने एक प्रेयर-व्हील बनाया हुआ है। वे और होशियार लोग हैं। उन्होंने एक चरखे जैसा एक चाक बना लिया, उसमें एक सौ आठ आरे लगा दिए और प्रत्येक पर मंत्र लिख दिया। एक सौ आठ गुरिए हम फेरते हैं, उन्होंने एक सौ आठ स्पोक वाला व्हील बना लिया, उसको प्रेयर-व्हील, प्रार्थना-चक्र। वे उसको घुमा देते हैं, धक्का मार दिया, वह प्रेयर-व्हील दस-पांच चक्कर लगा लेता है, उतने मंत्रों का उनको लाभ मिल जाता है। अब तो बिजली पहुंच गई होगी। अब तो उनको प्लग लगा देना चाहिए, वह दिन भर चक्कर लगाता रहेगा। वह धार्मिक आदमी है, जितने चक्कर लग गए उतने गुना एक सौ आठ उनको मंत्र का लाभ मिल गया। यह आदमी कभी भी समझदारी होगी तो इसका हमें इलाज करना पड़ेगा, यह क्या कर रहा है। यह क्या कर रहा है? लेकिन जब हम लेबल लगा देते हैं, तो पागलपन पहचानना मुश्किल हो जाता है। पूरब के मुल्कों में इसीलिए पागलों की संख्या कम है पश्चिम के मुल्कों की बजाय, और कोई कारण नहीं है। कई तरह के पागलों पर यहां दूसरे लेबल लगे हैं, वहां सब तरह के पागल पर पागल का लेबल लग गया है। वहां संख्या ज्यादा मालूम पड़ती है, यहां कम मालूम पड़ती है। संख्या बराबर, संख्या में कोई फर्क नहीं है, लेकिन यहां पागलों में कई तरह के विभाजन हैं। कुछ धार्मिक पागल हैं, उनको फिर पागल नहीं कहते हैं। कुछ राजनैतिक पागल हैं, उनको हम पागल नहीं कहते। कुछ और तरह के पागल हैं, ढंग-ढंग के पागल हैं, उनको हम पागल नहीं कहते, तो फिर पागल कम बच जाते हैं, क्योंकि कई पागल पागल के लेबल से बच कर दूसरा लेबल लगाए हुए हैं। लेकिन यह हमें पहचानना पड़ेगा।
महत्वाकांक्षा पर भी दूसरे लेबल लग जाते हैं। कोई कहता है, जनता की सेवा करनी है, लेकिन वह तभी तक कहता है जब तक पद पर नहीं होता। पद पर पहुंचते से ही जनता यानी क्या? कोई मतलब ही नहीं रह जाता, जनता की कोई फिकिर नहीं रह जाती। जनता की सेवा पूरी हो गई, क्योंकि फलां आदमी पद पर

पहुंच गया। पद पर पहुंचना था इसलिए जनता की सेवा भी करनी पड़ती थी। अब वह पद पर पहुंच जाने के बाद जनता विदा हो जाती, उससे कोई मतलब नहीं रह जाता। लेकिन जनता की सेवा का लेबल लगाने से महत्वाकांक्षा को बचाव मिल जाता, फिर महत्वाकांक्षा चल सकती है। इसलिए जनता के सेवकों से अब सावधान होने की जरूरत है। जनता के सेवकों ने मनुष्य का जितना अनहित किया है अब तक, उतना सीधे-सीधे दुष्टों ने नहीं किया, क्योंकि दुष्टों से हम सावधान हो सकते हैं। दुष्ट ऐसा आदमी है जिससे हम सावधान हो सकते हैं क्योंकि डर है कि वह कोई नुकसान पहुंचा दे। सेवक ऐसा आदमी है जो पैर दबाने से शुरू करता है और आखिर में गर्दन पकड़ लेता है। उसे पहचानना मुश्किल है, क्योंकि पैर दबाने वाला आदमी गर्दन पकड़ेगा इसका ख्याल ही नहीं आता। और पैर दबाते-दबाते हमारी नींद लग जाती है और वह गर्दन पर पहुंच जाता है। असल में पैर दबाना गर्दन को पकड़ने की सीढ़ी है, तरकीब है। ये दोहरे चेहरों से सारी मनुष्यता को सावधान होने की जरूरत है। और लेबल उखाड़ कर भीतर की सचाई क्या है वह देखने की जरूरत है, तो शायद हम मनुष्य का समाज निर्मित कर पाएं, अन्यथा समाज निर्मित नहीं हो पाएगा।
एकाध-दो बातें इस संबंध में और समझ लेनी जैसी हैं। यह मनुष्यों में इतना रुग्ण चित्त कैसे है? क्यों है? आदमी सहज और सरल क्यों नहीं है? सारे लोग समझाते हैं सहज होना चाहिए, सरल होना चाहिए, लेकिन आदमी सहज और सरल बिल्कुल नहीं है। आदमी बहुत जटिल है। बल्कि जिनको हम सहज और सरल कहते हैं उनकी जटिलता और भी अदभुत है।
मैं एक दिन ट्रेन में चला, मेरे साथ एक संन्यासी सवार हुए। वे संन्यासी टॉट के कपड़े बांधे हुए थे, फट्टियां, उनको बांधे हुए थे। बहुत लोग उन्हें छोड़ने आए थे। मैंने किसी से पूछा, उन्होंने कहा, बड़े सरल आदमी हैं देखते नहीं। कपड़ा भी नहीं पहनते हैं, फट्टियां बांधे हुए हैं, टॉट बांधे हुए हैं, इतने सरल आदमी हैं। मैं सोचने लगा कि टॉट बांधने से सरलता का क्या संबंध हो सकता है? फिर भी, अब वे लोग इतने कहने आए तो ठीक ही कहते होंगे। फिर ट्रेन चल पड़ी, मैं आंख करके लेटा रहा। उन्होंने अपनी टॉटपट्टियां निकाल कर रखीं, एक छोटी सी टोकरी थी, उसमें दोत्तीन पट्टियां, टॉटपट्टियां और थीं, वह उनके बाकी कपड़े होंगे। उन्होंने मेरी तरफ देखा कि मैं जागा तो नहीं हूं। मैं तो आंख बंद किए पड़ा था। फट्टियों के नीचे से उन्होंने रुपये निकाले, जल्दी से गिनती की, फट्टियों के नीचे वापस रख दिए। रुपये उनको भेंट में मिले होंगे। फिर भी उनको डर लगा, हालांकि हम दो ही थे उस कमरे में, तो उन्होंने वे रुपये फिर अपने सिर के नीचे रख कर और फट्टियों में दबा कर और सो गए।
सुबह जब वे उठे तो मैंने देखा आईने के सामने खड़े हैं और फट्टियां बांध रहे हैं बड़े साज-संवार से। आईने के सामने फट्टियां बांधने का कोई अर्थ समझ में नहीं आता। आईने के सामने कोई रेशम के कपड़े बांधता हो तो एकदम समझ में आ जाएगा।शृंगार कर रहा है। लेकिन आईने के सामने कोई नंगा फकीर फट्टियां बांधता हो तो हमारी समझ में न आएगा, वह भीशृंगार कर रहा है, वह भी तैयारी कर रहा है अपनी। एक तरह से बांधी है फट्टी, फिर दूसरी तरह से बांधी है, फिर तीसरी तरह से बांध कर तैयार हो गए हैं। आईने में देख कर प्रसन्न हुए हैं। वे समझ रहे हैं कि मैं सो रहा हूं। और मैं यह देख कर हैरान हूं कि आदमी का मन कितना चालाक है। वह टॉटफट्टियों से भी रेशम और मखमल का काम ले सकता है। शृंगार का भाव वही का वही है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा है। एक स्त्री जैसे तैयार हो रही हो, ऐसे वे भी तैयार हो रहे हैं। मैं तैयारी को मना नहीं करता हूं, लेकिन फट्टियों के पीछे तैयारी छिपी हो तो हमें लगता है सरलता आ गई। लेकिन धोखा हो जाता है। सादगी के पीछे कठिनाई छिप जाती है तो धोखा हो जाता है। ऊपर से सादगी होती है भीतर कठिन आदमी होता है। ऊपर सफेद कपड़े होते हैं भीतर काला आदमी छिप जाता है तो धोखा हो जाता है। आदमी को सरल होना चाहिए। क्योंकि सरल हुए बिना आदमी आनंदित नहीं हो सकता। लेकिन सरल आदमी को किसने नहीं होने दिया है? क्या आदमी खादी के कपड़े पहन ले तो सरल हो जाएगा? फट्टियां पहन ले तो सरल हो जाएगा? नंगा खड़ा हो जाए तो सरल हो जाएगा?

सरल होना इतना सरल नहीं है। आदमी सिर्फ एक ही शर्त पर सरल हो सकता है,
और वह सरलता आएगी आदमी अपने को स्वीकार कर ले, जैसा है वैसा स्वीकार कर ले। अगर उसे आईने में चेहरे को देख कर आनंद आता है तो वह छुप कर न देखे, वह कह दे कि मुझे आईने में चेहरे को देख कर आनंद आता है, तो आदमी सरल हो जाएगा। अगर वह छुप कर आईने को देखेगा तो सरल नहीं होगा, जटिल हो जाएगा। और अगर उसने कहा कि रेशम पहनना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं, मुझे तो टॉटफट्टियां पसंद हैं और टॉटफट्टियों को भी आईने में देखेगा तो वह टॉटफट्टियों के साथ रेशम का व्यवहार करेगा, और भी जटिल हो जाएगा। आदमी जैसा है अपने को स्वीकार कर ले तो सरलता आ सकती है। लेकिन पिछले मनुष्य-जाति के इतिहास ने हमें सरल नहीं होने दिया, उसने हमें उलटी बातें सिखाईं। आदमी के मन में जो भी है उससे उलटी बातें सिखाई हैं, तो आदमी जटिल हो गया है। जटिल होने से रुग्ण हो गया है। रुग्ण होने से विक्षिप्त हुआ चला जा रहा है।
हर आदमी सुख चाहता है। लेकिन पुरानी संस्कृति कहती है, दुख झेलना त्याग है। हर आदमी सुख चाहता है। और अगर कोई आदमी दुख झेलता होगा तो एक ही कारण से झेल सकता है कि उसे दुख में भी सुख आता हो, और कोई कारण नहीं हो सकता। कुछ ऐसे रुग्ण लोग हैं जिन्हें दुख में भी सुख आता है। कुछ ऐसे रुग्ण लोग हैं जिन्हें दुख में सुख आता है, वे बीमार हैं, क्योंकि दुख में जिसे सुख आता है वह स्वस्थ नहीं है, उसका मन विकृत हो गया।
लेकिन पुरानी सारी मनुष्यता की शिक्षा कहती है कि दुख में सुख लेना चाहिए, ये आदमी को जटिल और पागल करने के उपाय हैं। यह आदमी स्वस्थ नहीं हो सकेगा। आदमी सुख चाहता है। त्याग की बातें, तप की बातें, दुख को वरण करने की बातें आदमी को जटिल कर देंगी। ऊपर से दुख को वरण करेगा, पीछे से सुख के रास्ते खोजेगा। दोहरा चित्त हो जाएगा। पाखंड, हिपोक्रेसी विकसित होगी, और कुछ भी नहीं हो सकता।
आदमी को समझाया गया है भोजन करना, लेकिन स्वाद मत लेना। अब आदमी को पागल करने के सब उपाय किए गए हैं। भोजन करना लेकिन स्वाद मत लेना। अस्वाद से भोजन करना। अब आदमी स्वाद चाहता है। और सच तो यह है कि आदमी ही अकेला पृथ्वी पर एक ऐसा प्राणी है जो स्वाद का अनुभव कर पाता है। पशु-पक्षी सिर्फ भोजन करते हैं। स्वाद मनुष्य की विशिष्टता है। स्वाद एक बड़ा विकास है। आदमी स्वाद चाहता है। लेकिन सिखाया गया है स्वाद लेना मत। तब एक आदमी आंख बंद करके भोजन करता है और सब कोशिश करता है कि स्वाद न ले ले। नमक से बचता है, शक्कर से बचता है, घी से बचता है, इससे बचता है, उससे बचता है। सिर्फ बेस्वाद आता है, स्वाद से मुक्ति नहीं होती। और बेस्वाद स्वाद का ही रूपांतर है। बेस्वाद भोजन करना स्वाद का ही हिस्सा है। और पूरे वक्त पता चलता है कि सब बेस्वाद है। लेकिन वह बेस्वाद में मजा लेने की कोशिश कर रहा है। अब वह उलटे काम कर रहा है, वह शीर्षासन लगाने की कोशिश में लगा है जिससे विक्षिप्त हो जाएगा।
मैंने सुना है कि कहीं पृथ्वी के एक कोने पर ऐसा गांव है, जहां के धर्मशास्त्र कहते हैं कि मनुष्य के ठीक-ठीक खड़े होने की व्यवस्था शीर्षासन है। और जो पैर पर खड़ा होता है वह पापी है। तो उस गांव में बच्चे पैदा करने से ही सिर के बल खड़े किए जाते हैं। इसका परिणाम यह तो नहीं होता कि बच्चे सिर के बल खड़े हो जाना सीख जाते हों। एक परिणाम जरूर होता है कि पैर के बल चलना नहीं सीख पाते। सिर के बल तो खड़े होना सीख ही नहीं पाते। लेकिन सिर के बल खड़े करने की चेष्टा में पैर में जो शक्ति आनी थी पैर पर खड़े होने की, जो प्रशिक्षण होना था वह भी नहीं हो पाता। हां, कुछ बच्चे सिर के बल खड़े हो जाते हैं। और सिर के बल केवल वे ही बच्चे खड़े हो जाते हैं जो बच्चों में सबसे ज्यादा मंदबुद्धि के हैं। क्योंकि मंदबुद्धि को कोई फर्क नहीं पड़ता, वह गोबरगणेश है, उसे कैसा भी खड़ा कर दो। उसे सिर के बल खड़ा कर दो, तो वैसा ही खड़ा हो जाता है। बुद्धिहीनता सिर के बल भी खड़ी हो सकती है, बुद्धिमान तो इंकार करेगा। तो जो बुद्धिहीन हैं उस देश में वे सिर के बल खड़े होने में समर्थ हो जाते हैं। उनके सिर बड़े-बड़े हो जाते हैं, धीरे- धीरे पैर छोटे हो जाते हैं। फिर वे सिर के बल ही खड़े रहते हैं। उनके सिर कद्दू हो जाते हैं, आदमी के सिर नहीं रह जाते। लेकिन लोग उनको महात्मा

कहते हैं और नारियल चढ़ाते हैं और हाथ-पैर जोड़ते हैं। और जो लोग पैर के बल चलते हैं वे बेचारे सेल्फ-कंडेम्ड हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि हम पाप कर रहे हैं क्योंकि पैर के बल चल रहे हैं। और जब पैर के बल दो-चार मील चल कर लौटते हैं तो पाप के प्रायश्चित्त के लिए कद्दू हो गए, किसी सिर को नमस्कार करते हैं कि हे महात्मा! हमसे बड़ी गलती हो गई, माफ कर देना। उस गांव में जो स्वस्थ हैं वे पापी समझे जाते हैं और जो रुग्ण हैं और पागल हो गए हैं और बुद्धि खो दी है वे महात्मा हो गए हैं। मैं बड़ा हैरान हुआ कि यह गांव कहां है? मैं रात सोचता-सोचता सो गया कि यह गांव कहां है? रात सपने में मुझे ख्याल आया, यह अपने ही देश की खबर है। सुबह मैं बहुत हैरानी में जगा। मैं तो सोचता था यह गांव कहीं ओर होगा, लेकिन वह यही निकला हमारा ही गांव, हमारा ही देश।
सारी मनुष्यता ही ऐसे, पूरी पृथ्वी ही सिर के बल खड़े होने की कोशिश करती रही है। उस कोशिश में आदमी जटिल, रुग्ण, बीमार, विक्षिप्त, परवर्ट हो गया है। आदमी जैसा है उसे स्वीकार करना पड़ेगा सीधा। उसके ऊपर क्रोध है, तो क्रोध को स्वीकार करना पड़ेगा। उसके भीतर सेक्स है, तो सेक्स को स्वीकार करना पड़ेगा। उसके भीतर प्रेम है, तो प्रेम को स्वीकार करना पड़ेगा। स्वाद है, तो स्वाद। सुख है, तो सुख। उसकी जो आकांक्षाएं हैं, उसकी जो इच्छाएं हैं, वे सब स्वीकार करनी पड़ेंगी। लेकिन पुरानी संस्कृति सबको काट डालने को कहती है। इच्छाओं को काट डालो, तब स्वर्ग मिल सकता है। आकांक्षाओं को जला डालो, तुम मुक्त हो सकते हो। आदमी जो है वह न रह जाए, सब नष्ट-भ्रष्ट कर दो, तब कुछ होगा। लेकिन यह बड़ी उलटी बात है। इस उलटी बात का सिर्फ एक ही परिणाम हो सकता है कि हम ऊपर से ओर हो जाएं, भीतर से ओर हो जाएं। और जिंदगी दोहरे रास्तों पर दौड़ने लगे। और जिंदगी पाखंड हो जाए। पाखंडी समाज अजायबघर ही बनेगा, समाज नहीं बन सकता।
स्वस्थ समाज बनाने का नियम होगा कि हम मनुष्य जैसा है प्रकृति से उसे पूरा का पूरा स्वीकार करें। महात्माओं पर थोड़ा कम ध्यान दें और परमात्मा पर थोड़ा ज्यादा ध्यान दें। परमात्मा जो दे रहा है, आदमी को जैसा बना रहा है उसकी तरफ फिकिर करें। महात्मा परमात्मा के बड़े पुराने दुश्मन हैं। वे महात्मा परमात्मा के बड़े खिलाफ हैं। वे कहते हैं, परमात्मा ने ऐसा आदमी बनाया यह ठीक नहीं है। हम ऐसा आदमी बनाना चाहते हैं-यह ठीक आदमी होगा। परमात्मा का बनाया हुआ आदमी गलत है। महात्मा एक नया आदमी बनाने की कोशिश में लगे हैं, अब तक सफल नहीं हुए। लेकिन उनकी कोशिश में आदमी को पंगु और क्रिपल्ड कर दिया। उनके प्रयास अब बंद हो जाने चाहिए। महात्माओं से छुटकारा चाहिए ताकि हम परमात्मा के निकट पहुंच सकें। यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमें तो लगता है महात्मा परमात्मा की तरफ ले जाने वाले गुरु हैं।
महात्मा कभी परमात्मा तक नहीं ले जा सकते। क्योंकि महात्मा परमात्मा
ने जो भी निर्मित किया उस सबका विरोध कर रहे हैं। वे कहते हैं, यह पृथ्वी असार, यह जीवन पाप, यह आदमी की इच्छाएं सब अंधकार, नरक। आदमी जैसा है ऐसा नहीं, एक आइडियल है। एक आदर्श आदमी उन्होंने बनाया है जो कहीं भी नहीं है। वे उस आदर्श आदमी की शक्ल में सबको ढाल देना चाहते हैं। उनकी ढालने की कोशिश में एक-एक आदमी मरा जा रहा है, सब तरफ से टूटा जा रहा है। लेकिन उनकी कोशिश जारी है। और वे बड़े मजबूत रहे अब तक। लेकिन अब आगे उनकी मजबूती से छूटना पड़ेगा। अगर हम चाहते हैं स्वस्थ मनुष्य विकसित हो तो मनुष्य की प्रकृति को स्वीकार करना पड़ेगा। और प्रकृति की स्वीकृति से परमात्मा तक पहुंचने का द्वार मिल सकता है। क्योंकि प्रकृति परमात्मा का द्वार है। और हम जैसे हैं उसे स्वीकार करना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि हमारी स्वीकृति से हम जैसे हैं वैसे ही रह जाएंगे। नहीं, हम जैसे हैं जैसे ही हम स्वीकार करेंगे, हममें ट्रांसफार्मेशन, रूपांतरण शुरू हो... क्रोध करना मुश्किल हो जाता है। जब तक मैं क्रोध को दबाता हूं तब तक यह होता है कि दिन में दस दफे दबा लेता हूं और एक दफे हो जाता है। दस दफे का इकट्ठा हो जाता फिर एक दफे में बह जाता। इसलिए जो आदमी दिन में क्रोध को दबा रहा हो उससे जरा सावधान रहना, सांझ होते-होते वह क्रोध करेगा। और जिस आदमी ने दो-चार

दिन क्रोध दबाया हो, उससे वीकएंड में मिलना ही मत। और जिस आदमी ने साल-दो साल क्रोध किया, उससे दोस्ती मत करना, वह हत्या भी कर सकता है। साल-दो साल जिसने क्रोध को दबा लिया हो उसके भीतर इतना क्रोध इकट्ठा हो जाता है कि वह हत्या कर सकता है। यह बड़े मजे की बात है कि दुनिया के हत्यारे वे लोग नहीं होते जो रोज क्रोध कर लेते हैं, दुनिया की हत्याएं वे लोग करते हैं जो बहुत दिन तक क्रोध नहीं करते हैं। तब इतना क्रोध इकट्ठा हो पाता है कि वे हत्या कर सकें। नहीं तो रोज-रोज क्रोध बह जाए, तो आदमी कभी इतना क्रोध इकट्ठा नहीं कर पाता। दुनिया के जघन्य अपराधी वे हैं जो बहुत सप्रेस करते हैं। फिर एकदम से विस्फोट हो जाता है। और उस विस्फोट में बहुत नुकसान हो जाता है। साधारण आदमी रोज-रोज क्रोध कर लेता है, रोज झगड़ लेता है, फिर सब निपटारा हो जाता है, फिर शांत हो जाता है, फिर रोज चलता रहता है।
मैं यह कह रहा हूं कि जब हम क्रोध को पूरा स्वीकार कर लेते हैं और क्रोध को पूरा जानते हैं, पहचानते हैं, तो धीरे-धीरे अचानक हम पाते हैं कि क्रोध करना असंभव हो गया है। क्रोध इसीलिए संभव था कि हम सोचते थे कि क्रोध से दूसरे को चोट पहुंचती है। लेकिन जब हम क्रोध को पूरा जानते हैं तो पता चलता है क्रोध से तो अपने को ही चोट पहुंच जाती है। और अपने को चोट कोई भी नहीं पहुंचाना चाहता। आदमी स्वार्थी है। और अब तक हम समझा रहे हैं कि परार्थी हो जाओ। परार्थी कोई दुनिया में न होता है न हो सकता है। जिनको हम बहुत बड़े परार्थी कहते हैं-बुद्ध और महावीर उनसे परम स्वार्थी व्यक्ति खोजने मुश्किल हैं। परम स्वार्थी इस अर्थों में कि जो भी उनके हित में था वही उन्होंने किया है। जो उनके हित में नहीं था वह उन्होंने कभी किया ही नहीं। अगर उन्होंने आपको गाली नहीं दी तो आप यह मत सोचना कि आप पर दया की और गाली नहीं दी। नहीं, वे जानते हैं कि गाली देने से अपने को ही चोट पहुंचती है किसी दूसरे को नहीं। अगर उन्होंने क्रोध नहीं किया तो इसलिए नहीं कि क्रोध करने से किसी का नुकसान न हो जाए, उन्होंने क्रोध इसलिए नहीं किया कि वे जानते हैं क्रोध अपने हाथ से अपने पैरों को काटना है। अगर वे चोरी करने नहीं गए तो इसलिए नहीं गए कि आपके धन की उनको बड़ी बचाने की इच्छा है, वे चोरी करने इसलिए नहीं गए कि आपका तो सिर्फ धन खोएगा उनकी आत्मा भी खो जाएगी। वे उसे खोने को राजी नहीं हैं।
आदमी को अगर सहज और सरल बनाना है तो उसे परिपूर्ण उसके स्वार्थ का बोध देना जरूरी है। परार्थ का बिल्कुल बोध देने की जरूरत नहीं। एक-एक आदमी को अपना स्वभाव, अपना स्वार्थ, अपनी प्रकृति, अपनी इच्छाओं का पूर्ण बोध हो तो आप अचानक पाएंगे वह आदमी धार्मिक होना शुरू हो गया। उस आदमी की जिंदगी में रूपांतरण आना शुरू हो गया। एक ट्रांसफार्मेशन आया है जहां बदलाहट शुरू हो गई।
एक छोटी कहानी अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
बुद्ध एक गांव के पास से गुजरते हैं। कुछ लोगों ने घेर लिया है और बहुत गालियां दी हैं और अपशब्द बोले हैं। बुद्ध ने कहाः तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। उस गांव के लोगों ने कहाः पागल तो नहीं हो गए हैं आप? हम गालियां दे रहे हैं और आप कह रहे हैं बात! बात नहीं है यह, हम गालियां दे रहे हैं। आप पागल तो नहीं हो गए हैं? बुद्ध ने कहाः पागल मैं था तब तुम आते तो मैं भी समझता कि तुम गालियां दे रहे हो। लेकिन मुझे जल्दी जाना है दूसरे गांव, अगर बात पूरी हो गई हो तो जाऊं? और अगर बात पूरी न हो तो लौटते में फिर रुक जाऊंगा, तुम यहीं मिल जाना, फिर तुम अपनी बात पूरी कर लेना। पर उन लोगों ने कहाः यह बात नहीं है, हम सीधे-सीधे अपशब्द बोल रहे हैं, आप जवाब न देंगे? बुद्ध ने कहाः अगर जवाब चाहिए थे तो दस साल पहले आना था। तब तुम गालियां देते तो मैं दुगुने वजन की गाली देता। लेकिन अब बड़ी मुश्किल हो गई। उन्होंने कहाः मुश्किल क्या है देना हो तो दीजिए न, मुश्किल क्या है, आप गालियां दें। नहीं, उन्होंने कहाः तुम्हारे कारण मुश्किल नहीं है, मुश्किल अपने ही कारण हो गई।
पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लाए थे, और मेरा पेट भरा था, तो मैंने उनसे कहा, क्षमा करो, धन्यवाद। वे मिठाइयां वापस ले गए। अब तुम गालियां लाए हो और मैं कहता हूं क्षमा करो, धन्यवाद, पेट भर गया, अब तुम क्या करोगे?

तुम बड़ी मुश्किल में पड़ गए, अब तुम क्या करोगे? क्योंकि गालियां तुम दे सकते हो, लेकिन लेना तो मुझ पर ही निर्भर है, जब तक मैं कुछ न लूं तुम्हारे देने का क्या अर्थ? तुमने दी, ठीक, धन्यवाद, मैं नहीं लेता हूं। और जब तक मैं न लूं तब तक मैं कैसे गाली लौटाऊं? लेना तो जरूरी है लौटाने के लिए, मैं लेता ही नहीं। अब तुम क्या करोगे?
एक आदमी ने कहाः यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। वे तो मिठाइयां ले गए वापस लेकिन गालियां हम कहां ले जाएं?
बुद्ध ने कहाः अब तुम बैठो यहीं और विचार करो, मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। लेकिन दस साल पहले अगर तुम आए होते तो जरूर मैं तुम्हारी गाली ले लेता, क्योंकि मैं इतना नासमझ था कि गालियां भी ले लेता था। अब तो मैं फूल-फूल लेता हूं, कांटे छोड़ देता हूं। अब कांटों में हाथ ही नहीं ले जाता। पहले ऐसा नासमझ था कि फूल मुझे दिखते ही न थे, कांटों को ही पकड़ लेता था, चुभ जाता था, फिर रोता था, खून बहता था, पीड़ा होती थी। अब तुम्हारी गालियां मुझे कांटे जैसी लगती हैं, अब तुम ले जाओ, धन्यवाद, तुमने मेरे लिए बड़ी मेहनत की, इतने दूर आए, धूप में कष्ट उठाया। और दुखी हूं कि तुम्हें कुछ भी वापस नहीं लौटा सका हूं।
अब यह जो आदमी है परम स्वार्थी है। इस आदमी जितने स्वार्थी आप नहीं हैं। आपने दया करके फौरन गाली ले ली होती। और आपने दुगुने वजन का जवाब भी दे दिया होता। और गांव के लोग प्रसन्न लौट गए होते क्योंकि सफल हो गए होते। लेकिन असफल हो गए और बहुत उदास लौटे होंगे। और उस दिन उनको बड़ी मुश्किल में पड़ गए होंगे कि अब क्या करें, क्या न करें। क्योंकि अगर कोई आदमी गाली का जवाब न दे! लेकिन बुद्ध इसलिए गाली का जवाब नहीं दे रहे हैं कि उनकी दया है आपके प्रति। अपने पर दया है इसलिए गाली नहीं ले रहे हैं। और अगर हम जिंदगी को ठीक स्वार्थ के नियमों पर विकसित कर सकें, जो अब तक नहीं हुआ, तो आदमी सरल हो जाए, सीधा और साफ हो जाए, जिंदगी स्पष्ट हो जाए। आदमी को खोलना पड़ेगा, नेकेट, नंगा, पूरा, ताकि वह जैसा है हमें पता चले और हम उसे वैसा स्वीकार कर लें, तो फिर समस्याएं नहीं हैं, तो फिर सरलता है। और जहां सरलता है वहीं मनुष्य का समाज विकसित हो सकता है।
इन वाले चार दिनों में मैं सरल और सीधे आदमी की खोज करूंगा। और जिनको उत्सुकता हो, वे निमंत्रित हैं। और आपके जो भी प्रश्न हों वे सब लिख कर दे देंगे, ताकि हम उस खोज को ठीक से कर सकें। अगर हम सरल और सीधे आदमी को खोजने में असमर्थ हो जाएं तो परमात्मा बहुत दूर नहीं है, वह मिल सकता है। लेकिन आदमी पागल हो, विक्षिप्त हो, तो परमात्मा को खोजना असंभव है। पागलखाने से परमात्मा के मंदिर के लिए कोई रास्ता नहीं जाता है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पंथ प्रेम को अटपटो
तीसरा प्रवचन

होश से क्रांति

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य कैसे द्वंद्व में, कैसे विरोध में, कैसी जड़ता में ग्रस्त है! किन कारणों से मन की, मनुष्य की पूरी संस्कृति की यह दुविधा है?
पहली बातः हम जब तक जीवन की समस्याओं को सीधा देखने में समर्थ नहीं होंगे और निरंतर पुराने समाधानों से, पुराने सिद्धांतों से अपने मन को जकड़े रहेंगे, तब तक कोई हल, कोई शांति, कोई आनंद या कोई साक्षात्कार असंभव है। आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति इसके पहले कि जीवन सत्य की खोज में निकले, अपने मन को समाधानों और शास्त्रों से मुक्त कर ले। उनका भार मनुष्य के चित्त को ऊर्ध्वगामी होने से रोकता है। इन समाधानों से अटके रहने के कारण दुविधा पैदा होती है।
और दूसरी बातः हम अत्याधिक आदर्शवाद से भरे हों, तो जीवन में पाखंड
को जन्म मिलता है। हम वैसे दिखना और होना चाहते हैं, जैसे हम नहीं हैं। हम दूसरे लोगों का अनुसरण, दूसरे लोगों की अनुकृति बनना चाहते हैं। और तब जीवन स्वंय की सृजनात्मकता, क्रिएटिविटी खो देता है। तब हम नकल होकर, कापियां होकर रह जाते हैं।
स्वाभाविक रूप से कोई आत्मा किसी दूसरी आत्मा की नकल या अनुकृति नहीं हो सकती है। प्रत्येक आत्मा के भीतर अपना अद्वितीय जीवन है। अपनी यूनीक, अपनी बेजोड़ प्रतिभा और शक्ति है, वह विकसित होनी चाहिए। जब तक हम अनुसरण करते हैं, दूसरों के ज्ञान को, उधार ज्ञान को अपने मस्तिष्क पर लादते हैं, तब तक हमारा मन द्वंद्वशून्य नहीं होगा। इस सबको एक छोटी सी कहानी में संक्षिप्त करके मैं आज की चर्चा शुरू करूं।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़े नगर में, एक फोटोग्राफर ने अपनी दुकान पर तख्ती लटका रखी थी। दूर एक आदिवासी राजा शहर आया, पहली बार आया। उसके मन में भी चाह उठी कि मैं भी फोटो उतरवाऊं। वह उस फोटोग्राफर के स्टुडियो पर गया। उसने वह तख्ती पढ़ी। उस तख्ती पर फोटो उतरवाने के दाम लिखे हुए थे। उस पर लिखा था, "जैसे आप हैं यदि वैसी ही फोटो उतरवानी है, तो दस रुपए। जैसा आप चाहते हैं कि आप दूसरों को दिखाई पड़ें, अगर वैसी फोटो उतरवानी है, तो पंद्रह रुपये। और जैसी आप कामना करते हैं कि आपको होना चाहिए था, यानी भगवान आपको जैसा बनाता, अगर वैसी फोटो उतरवानी है, तो बीस रुपए।"
वह थोड़ा हैरान हआ। देहात का, जंगल का, सीधा-सादा राजा था। उसकी समझ
में नहीं आया कि यह कैसा मामला है! उसने स्टुडियो के मालिक को पूछा कि "क्या पहली फोटो के अलावा दूसरी फोटो उतरवाने लोग भी यहां आते हैं? क्या ऐसे लोग भी हैं जो दूसरी वाली फोटो उतरवाना चाहते हों? उस स्टुडियो के मालिक ने कहा, "आप पहले आदमी हैं जो यह पूछते हैं! अब तक पहली फोटो उतरवाने तो कोई आया ही नहीं। कोई अपने जैसा दिखना ही नहीं चाहता!" उसने पूछा, "आप कौन सी फोटो उतरवाना चाहते हो?" उसने कहा, "क्षमा करें, मैं तो पहली फोटो उतरवाऊंगा। क्योंकि मैं अपनी फोटो उतरवाने आया हूं, किसी और की फोटो उतरवाने नहीं आया हूं!"
लेकिन यह तो गांव का गंवार आदमी था। जो समझदार हैं, वे कभी अपनी फोटो नहीं उतरवाते हैं। वे महावीर की फोटो उतरवाते हैं, बुद्ध की फोटो उतरवाते हैं, कृष्ण की फोटो उतरवाते हैं, का्रइस्ट की फोटो उतरवाते हैं, लेकिन अपनी फोटो नहीं उतरवाते।
और इसलिए दुनिया में द्वंद्व हैं। क्योंकि कोई आदमी अपने जैसा होने
को राजी नहीं है, तैयार नहीं है। इसके लिए बहुत करेज की, बहुत साहस की जरूरत है। राम होने की कोशिश बहुत आसान है, क्योंकि राम के नाम के साथ प्रतिष्ठा है, रिस्पेक्टेबिलिटी है, खुद के नाम के साथ प्रतिष्ठा नहीं है। बुद्ध होने की कोशिश आसान है। बुद्ध को हजारों लोग, लाखों लोग भगवान मानते हैं। आपका मन भी भगवान मान कर पूजे जाने को उत्सुक होता होगा। महावीर होने की कोशिश आसान है, क्योंकि महावीर को तीर्थकर मानने वाले

लाखों लोग हैं। उनके पैरों में सिर रखते हैं, उनकी मूर्तियां और मंदिर बनाते हैं। आपके अहंकार को भी इससे तृप्ति मिलेगी कि आप भी महावीर और बुद्ध जैसे हो जायें। लेकिन अपने जैसे होने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। क्योंकि अपने जैसे होने के साहस का अर्थ है नो-बडी होने का साहस। ना-कुछ होने का साहस।
दूसरे की अनुकृति हमेशा आसान है, क्योंकि दूसरे की अनुकृति--उसी की अनुकृति होना चाहते हैं, जिसके नाम के साथ प्रतिष्ठा है, यश है, पद है। और चाहे वह पद लौकिक हो, चाहे वह पद पारलौकिक हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। हमारा अहंकार हमेशा उनकी तरफ जाना चाहता है, जो शिखर पर खड़े हैं, जो ऊपर ऊंचाई पर खड़े हैं। और इसलिए हम नकल में पड़ जाते हैं। सारी अनुकृति, सारी नकल, सारी फालोइंग, सारा अनुकरण, ये सारे दुनिया के अनुयायी, ये सारे लोग वह जो दूसरे जैसे होने की कोशिश में लगे हैं, ये सारे लोग अहंकारग्रस्त हैं। और जो अहंकारग्रस्त हैं, उनका मन शांत नहीं हो सकता। उनका मन द्वंद्वशून्य नहीं हो सकता। इसलिए आज मैं आपसे विधायक साधना के संबंध में कुछ कहने को हूं... । लेकिन कुछ चीजें टूट जानी चाहिए, तब कुछ चीजें निर्मित की जा सकती हैं।
जब बीज को हम बोते हैं, इससे पहले कि बीज से अंकुर पैदा हो, बीज टूट जाता है और मिट्टी में मिल जाता है। अगर बीज टूटने से इनकार कर दे, अगर बीज मिटने से इनकार कर दे, तो फिर अंकुर का जन्म नहीं हो सकता। इसके पहले कि सृजन हो, विध्वंस उससे पहले आता है। विध्वंस सृजन का पहला चरण है।
कुछ बातें हैं, जो तोड़ देने जैसी हैं। मन के सारे आदर्श खंडित हो जाने चाहिए। कोई भी व्यक्ति, जब तक किसी की प्रतिमा के अनुकूल अपने को बनाने की कोशिश कर रहा है, तब तक वह आत्मघाती है। वह आत्म-विरोधी है। तब तक वह स्वयं की सत्ता की सत्ता को न तो स्वीकार करता, न स्वंय की महत्ता को समझने को राजी है, न स्वंय की सत्ता को विकसित करने के लिए उसकी दृष्टि हो सकती है। जब हम सारी प्रतिमाओ को अपने चित्त से अलग कर देते हैं, सारे आदर्शो
को, सारे महापुरुषों को, सारे महात्माओं को जब हम अपने मन से अलग कर देते हैं, तब हम खाली अकेले रह जाते हैं। और तब हम दृष्टिपात कर सकते हैं उस व्यक्तित्व पर जो हमारा है; उस व्यक्तित्व पर जो हमें मिला, उस बीज पर जिसे लेकर हम जन्मे हैं। और तब हम विचार कर सकते हैं कि इस बीज के लिए क्या करें, इस बीज को कैसे विकसित करें; इस बीज को कैसे अंकुरित करें।
पहली बात है, इस विधायक साधना के लिए पहली आधारभूत बात है वह यह कि हम जानें कि हम क्या हैं? हम इस कोशिश में न पड़ें कि हमें कैसा होना चाहिए। हम जानें कि हम क्या हैं। आदर्श नहीं, तथ्य क्या है, हमारी एक्चुअलिटि क्या है। वस्तुतः हम क्या हैं। आत्मा और परमात्मा नहीं, वास्तविक तथ्य क्या हैं हमारे मन के। हमारे मानसिक जीवन के वास्तविक भेद क्या हैं? बहुत कठिन है। कठिन इसलिए नहीं की स्वयं के तथ्य को जानना कोई अपने आपसे दूर बात है। कठिन इसलिए कि हम सबने हजारों वर्षों से इस तरह के आदर्श, मुखौटे ओढ़ रखे हैं कि अब अपनी शक्ल पहचाननी बहुत कठिन है।
कभी आपने ख्याल किया है, जब आप अपनी पत्नी के पास होते हैं, तो आपका चेहरा क्या वही होता है, जब आप नौकर के पास होते हैं तब होता है? फर्क हो जाता है। जब आप नौकर की तरफ आंख उठाते हैं, तो वे आंखें दूसरी होती हैं। जब आप पत्नी की तरफ आंखें उठातें हैं, तो आंखें दूसरी होती हैं। जब आप अपने बच्चों को देखते हैं, तो वे आंखें दूसरी होती हैं, जब आप एक भिखमंगे के बच्चे को देखते हैं, तो वे आंखें दूसरी होती हैं। दिन में चौबीस घण्टे गिरगिट की भांति आपके मुखौटे, आपके चेहरे, आपकी आत्मा हवा की तरह बदलती रहती है। कभी इस पर ख्याल किया है? कभी इस पर विचार किया है? कभी इस पर दृष्टिपात किया है? आपका चेहरा कौन-सा है, आपका ओरिजिनल फेस क्या है? आप कौन हैं, आपका तथ्य क्या है? चौबीस घण्टे बदले जा रहे हैं, चौबीस घण्टे! दफ्तर में मालिक के पास होते हैं, बास के पास होते हैं, तो आपका चेहरा कुछ और है। चपरासी के साथ खड़े होते हैं, आपका चेहरा कुछ और है। मित्र के साथ खड़े होते हैं, चेहरा कुछ और है। परिचित के साथ खड़े होते हैं, चेहरा कुछ और है। आपको पता है, आपका असली चेहरा कौन-सा है? चौबीस घण्टे जो आदमी चेहरे

बदलता रहता है, वह धीरे-धीरे भूल जाता है कि उसका तथ्य क्या है, उसकी एक्चुअलिटी क्या है।
मैंने सुना है, एक महिला एक खजांची से कुछ रुपये भुनाने गयी खजाने में। उस खजांची ने उससे कहा कि "मैं यह कैसे मानूं कि आप आप ही हैं?" वह किसी तरह की साक्षी और गवाही चाहता था। उसने पूछा, "मैं कैसे मानूं कि आप आप ही हैं?" उस महिला ने जल्दी में अपने मनी बैग से अपना आईना निकाला और अपना चेहरा देखा और कहा, "मैं मैं ही हूं!" उसने कहा, "मान लीजिए, मैं मैं ही हूं!" पर उसके पहले उसने अपना आईना निकाल कर अपना चेहरा देख ही लिया।
अगर आईने ने हों, तो हमें अपने आपको पहचानना कठिन हो जाएगा। क्योंकि हमें अपनी मौलिक प्रतिभा, अपनी मौलिक क्षमता का, वह जो हममें जन्मजात तथ्य है, उसका हमें कोई पता नहीं रहा। हमने खूब वस्त्र ओढ़ लिए हैं और हम उन वस्त्रों में इस भांति भूल गये हैं, यह आश्चर्यजनक है! मनुष्य वस्त्रों में खो जाता है। और हम वस्त्रों में खो गये हैं। जब आप प्रेम प्रकट कर रहे होते हैं, तब क्या कभी आपने गौर किया, कभी देखा कि वह प्रेम आपके भीतर है? या कि आपके शब्दों में है, और वे शब्द उन किताबों से लिए गये हैं, जिनमें प्रेम की बातें कही गयी हैं? जब आप प्रेम करते हैं, तो प्रेम आपके भीतर है या कि आप प्रेम का दिखावा कर रहे हैं?
स्मरण रखें-जो अपने तथ्य को, जैसा वह है नग्न-वस्तुतः जब तक कोई व्यक्ति अपने उस तथ्य को नहीं जानेगा, तब तक उसके जीवन में कोई बुनियादी क्रांति न घटेगी। हमारे भीतर पशु छिपा है, लेकिन अहंकार उसे उघाड़ना नहीं चाहता, और अपने भीतर छिपे हुए पशुओं को पहचानना हमारे अहंकार को अपनी ही आंखों में गिराना होगा, खुद ही खंडित करना होगा। हमने खुद अपनी जो तस्वीर बना ली है, बहुत सुंदर है। जब हम भीतर झांकेंगे, तो बहुत कुरूप व्यक्ति को वहां पायेंगे। और तब परिणाम क्या होगा? जब-जब अपने भीतर हमें कुरूपता दिखायी पड़ती है, जब-जब अपने भीतर कोई असुंदर तत्व दिखायी पड़ता है, तभी हम क्या करते हैं? तब हम यह करते हैं कि असुंदर को सुंदर से ढांकने की कोशिश करते हैं।
मैं एक गांव में गया, एक घर ठहरा। उस घर में बहुत गंदगी थी। जिस कमरे
में मुझे ठहराया, उसमें बहुत दुर्गंध थी। उन लोगों ने बहुत इत्र वहां छिड़क दिया, खूब फूल लाकर लगा दिए। जब मैं वहां पहुंचा, तो वहां इत्र-इत्र था। जरूर मुझे शक हो गया, जब इतना इत्र छिड़का है, तो जरूर कुछ बदबू होनी चाहिए, नहीं तो कौन इत्र छिड़कता है! इतने इत्र छिड़कने की जरूरत क्या है? जरूर यहां कुछ बदबू होनी चाहिए। थोड़ी देर में इत्र तो उड़ गया। रात जब मैं सोया तब तो इत्र था, जब सुबह उठा तो बदबू थी। उस बदबू को छिपाने के लिए इत्र छिड़क दिया।
जो आदमी जितना कुरूप होता है, उतना सुंदर वस्त्रों में अपने को ढाकने
की कोशिश में लग जाता है। जो आदमी जितना कुरूप होता है, उतने सुंदर होने की, सारे के सारे आयोजन, सारे प्रसाधन खोजने लगता है। ये सारी खोज किसी चीज को ढांकने के लिए होती है।
संसार में हम अपने को ढांकते हैं, लेकिन परमात्मा की तरफ जिसको जाना
है, उसे अपने को उघाड़ना पड़ता है, ढांकना नहीं पड़ता। क्योंकि मैं कितने ही वस्त्र पहन लूं, मेरी नग्नता आपसे छिप जायेगी। लेकिन स्वयं मेरी आत्मा के समक्ष मेरी नग्नता कैसे छिप जायेगी? और जो मेरी आत्मा के समक्ष छिपनी असंभव है, वह परमात्मा के समक्ष भी कैसे छिप सकती है? वहां तो जो मैं हूं, जैसा हूं, वैसा ही हूं। वहां कोई भेद नहीं पड़ सकता है।
तथ्य इसलिए जानने जरूरी हैं। लेकिन हम तथ्यों से भागते हैं; हम एस्केप करते हैं। अगर आपको लगता है कि मेरा मन बहुत लोभी है, तो आप क्या करते हैं? आप एक मंदिर बनवाने लगते हैं, ताकि मैं समझा सकूं अपने को कि नहीं, मैं लोभी कहां हूं! देखिए इतना बड़ा मंदिर बनाया है!
एक मंदिर बन रहा था; मेरे गांव में एक नया मंदिर बन रहा था। मुझे हैरानी हुई, क्योंकि लोग तो घटते जाते हैं धर्म के मानने वाले, लेकिन नये मंदिर क्यों बनते जाते हैं। मंदिर पुराने बहुत हैं, उनमें कोई जाने वाला नहीं है। नये मंदिर रोज बनते हैं तो मैं हैरान था। मैं वहां से निकलता था।

मेरे मन में समझ नहीं आता था कि नया मंदिर क्यों बन रहा है! तो मैंने एक बूढ़े कारीगर को पूछा कि "नया मंदिर क्यों बन रहा है? तुमने बहुत मंदिर बनाये हैं, तुम्हें जरूर पता होगा।" अदभुत वह कारीगर रहा होगा। उसने मुझसे कहा, "मेरे साथ पीछे-पीछे आओ।" पीछे गया, तो वहां पर खुदाई हो रही थी, मूर्तियां बन रही थीं। मैंने सोचा, शायद वह कहेगा कि इन मूर्तियों के लिए मंदिर बन रहा है। मैंने कहाः "यह तो कोई उत्तर न होगा, क्योंकि तब सवाल यह होगा कि ये मूर्तियां क्यों बन रही हैं, पुरानी मूर्तियां तो काफी हैं। उनको पूजने वाला कोई नहीं, उनको देखने वाला कोई नहीं, इन नई मूर्तियां को बनाने की जरूरत क्या है?" लेकिन वह बूढ़ा कारीगर बहुत होशियार रहा होगा। बड़ी गहरी उसकी दृष्टि रही होगी। उसने मुझसे यह नहीं कहा कि मूर्तियों के लिए मंदिर बन रहा है। वह मुझे और पीछे ले गया और वहां एक पत्थर पर कुछ कारीगर काम करते थे। उसने कहा, "इस पत्थर के लिए मंदिर बन रहा है!" मैंने गौर से देखा, उस पत्थर पर मंदिर के बनाने वाले का नाम लिखा जा रहा था।
और सब मंदिर इसी के लिए बने हैं। वे उन भगवानों के मंदिर नहीं हैं जिनकी मूर्तियां भीतर हैं। वह झूठी बात है। वे उन पत्थरों के मंदिर हैं जो बाहर लगे हुए हैं। वे उन नामों के लिए बने हैं। और यह लोभ का हिस्सा है। यह लोभ का हिस्सा है। वह यहां नहीं, उस लोक के लिए भी इनवेस्टमेंट करना चाहता है, परलोक के लिए भी, कि मैंने एक मंदिर बनाया था। भगवान से कहेगा कि याद रखो, मैंने एक मंदिर बनवाया था।
मैंने सुना है, एक बार एक बहुत बड़े धनपति की मृत्यु हुई। वह गया- काल्पनिक कथा होगी-वह स्वर्ग में गया। उसने जाकर जोर से दरवाजे खटखटाये। उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा आदमी मरा, दरवाजे बंद थे! पहले से ही खोल कर रखना चाहिए। सारे जमीन के अखबारों में खबरें छप गई थीं, क्या भगवान तक अभी कोई खबर नहीं आई? उसने जोर से दरवाजा खटखटाया। गरीब आदमी धीरे-धीरे खटखटाता है। बड़ा आदमी कोई धीरे थोड़े ही खटखटाता है! जोर से दरवाजे को धक्का दिया। भगवान भी भीतर डर गये होंगे! दरवाजा उठ कर भगवान ने खोला और पूछा, "कहिए।" उसने कहा, "कहिए क्या! पता नहीं चला आपको कि मैं मर गया हूं? इधर खबर नहीं आई? यहां कौन-सा अखबार आता है? सभी अखबारों में करीब-करीब खबर छपी है और पहले पृष्ठ पर छपी है।" उसने कहा, यह तो मैंने समझा, लेकिन आपका प्रयोजन क्या है? क्या चाहते हैं? उसने कहाः "मैं स्वर्ग चाहता हूं।" और उसने खीसे से नोटों का बंडल निकाला। वह साथ लेता आया था। उसने सोचा दुनिया में जो आदतें काम करती हैं, आखिर भगवान भी क्या दूसरे ढंग का होगा? उसने भगवान के हाथों में रुपये थमाने चाहे। भगवान ने कहा, "क्षमा करें। शायद आपको पता नहीं। आपकी दुनिया के सिक्के यहां नहीं चलते। ये रुपये बेकार हैं।" तब तो वह एकदम से फीका पड़ गया, तब तो वह ताकत चली गई। जो दरवाजे को जोर से खटखटाते वक्त थी, वह ताकत एकदम से ढीली हो गई। वह ताकत तो उन नोटों की थी, जो चलते तो ताकत थी। नहीं चलते, तो बेकार हो गई। फिर भी उसने कहा कि "मैं स्वर्ग में रहना चाहता हूं।"
भगवान ने अपने कारीगरों, अपने काम करने वालों को दफ्तर में पूछा कि "इसके नाम कुछ है स्वर्ग में रहने लायक?" उसने खुद पूछाः "तुमने कभी कुछ किया है?" उसने कहाः "हां, मैंने एक दफा एक बूढ़ी औरत को पंद्रह नये पैसे दिये थे!" पूछा, "देखो भाई यह सच बोलता है क्या?" देखा तो बात सच थी। उसने पंद्रह पैसे दिये थे। पूछाः "और भी तुम्हें कुछ याद आता है?" उसने कहा, "एक दफा मैंने एक विद्यार्थी को भी पांच नये पैसे की सहायता दी थी।" वह भी सच पाया गया। "और याद आता है?" उसने कहाः "और तो मुझे कुछ याद नहीं आता।" असल में उसने और कुछ किया नहीं था। भगवान ने अपने सलाहकारों से पूछा, "इस आदमी के साथ क्या किया जाये?" उन्होंने कहा, "इसके पंद्रह पैसे वापस कर दिये जायें। क्योंकि पंद्रह पैसे में स्वर्ग बहुत सस्ता है!"
मैं आपसे कहता हूं, पंद्रह पैसे में अगर स्वर्ग सस्ता है, तो पंद्रह
लाख में भी स्वर्ग सस्ता है। पंद्रह करोड़ में भी स्वर्ग सस्ता है। और कितने ही मंदिर बनायें, मंदिर बनाने से स्वर्ग नहीं मिल सकता, न परमात्मा की कोई अनुभूति हो सकती है, न कोई शांति मिल सकती है। क्योंकि किसलिए आप

बनाते हैं! यह रुग्ण चित्त अपने को धोखा देने के बहुत उपाय करता है। बहुत उपाय करता है।
एक आदमी को क्रोध मालूम होता है, क्रोध पीड़ा देता है। और शास्त्र कहते हैं कि क्रोधी नरक जायेगा, वहां अग्नि में जलाया जायेगा, गर्म कड़ाहों में खौलाया जायेगा। उसका चित्त डरता है, घबड़ाता है। कमजोर आदमी है, क्षमा करने की योजना बना लेता है। क्षमा करूं, किसी को क्रोध न करूं। लेकिन जो चित्त क्रोधी है, वह क्षमा कैसे करेगा? यह बुनियादी सवाल विचार करने जैसा है। यह सब बहुत गंभीरता से विचार करने जैसा है, क्योंकि पूरे जीवन की प्रक्रिया इस पर निर्भर करेगी।
एक लोभी आदमी त्याग कैसे कर सकता है? ये तो दोनों बातें विरोधी हैं।
एक अहंकारी व्यक्ति विनीत कैसे हो सकता है? ये तो विरोधी बातें हैं। एक क्रोध से भरा व्यक्ति प्रेमपूर्ण कैसे हो सकता है? या घृणा से भरा व्यक्ति प्रेमपूर्ण कैसे हो सकता है? या हिंसा से भरा हुआ चित्त अहिंसक कैसे हो सकता है? अहिंसक नहीं हो सकता। लेकिन तब वह अहिंसक होने के धोखे ईजाद कर सकता है। वह रात पानी छान कर पी सकता है। वह कुछ चीजें खाने को छोड़ सकता है और तब वह यह अपने को वहम पैदा कर सकता है कि मैं अहिंसक हो गया। अहिंसक होना इतनी सस्ती बात नहीं। पंद्रह नये पैसे में स्वर्ग नहीं मिल सकता है, और न अहिंसा मिल सकती है। अहिंसक होना तो पूरी आत्मक्रांति है। लेकिन वह कैसे होगा? जब तक हमारा चित्त क्रोध से भरा है, हिंसा से भरा है, घृणा से भरा है, अहिंसक कैसे होंगे? लेकिन यह क्रोधी, हिंसक चित्त अहिंसक होना चाहता है। तब यह कोई तरकीब ऊपर से ढांक लेता है। भीतर हिंसा सरकती है, ऊपर से अहिंसा का वेश अख्तियार कर लेता है। ज्यादा गहरी नहीं है इसकी अहिंसा, स्किन डीप भी नहीं है। जरा-सा इसको उकसा दें, इसकी हिंसा बाहर आ जायेगी। अभी हिंदुस्तान में हमला हुआ दूसरे मुल्कों का। इस मुल्क के सब अहिंसक एकदम हवा हो गये! यहां मुल्क के साधु भी युद्ध की भाषा बोलने लगे। वे भी बोले कि अब तो अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत है। कैसा पागलपन का मामला है! एक आदमी कहे कि सत्य की रक्षा करने के लिए अब तो झूठ बोलने की आवश्यकता है, तो रक्षा किसकी होगी? एक आदमी कहे, अहिंसा की रक्षा के लिए अब तो हिंसा की जरूरत है, तो रक्षा किसकी होगी? एक आदमी कहे कि भगवान की रक्षा के लिए तो शैतान के मंदिर बनाने की जरूरत है, तो रक्षा किसकी होगी? लेकिन इस मुल्क को, जिसको हम कहते हैं अहिंसक, उसकी अहिंसा भी दो क्षण में उखड़ गयी। उखड़ गयी, क्योंकि वह बहुत पतली है, ऊपर छायी हुई है। भीतर से कोई अहिंसा नहीं है, हो भी नहीं सकती। हिंसक मनुष्य, हिंसक चित्त कभी भी अहिंसक कैसे हो सकता है? वह अहिंसा को थोप लेगा, कल्टीवेट कर लेगा। फिर उससे क्या होगा?
जिस व्यक्ति के भीतर कामुकता है, सेक्सुअलिटी है, वह अगर ऊपर से ब्रम्हचर्य को ओढ़ ले, तो क्या होगा? सेक्सुअलिटी नष्ट हो जायेगी? नहीं, उसकी अंतर्धाराएं प्रविष्ट हो जायेंगी। ऊपर ब्रम्हचर्य की बातें होंगी, भीतर सेक्सुअलिटी, भीतर कामुकता गहरी होकर घूमने लगेगी।

एक साध्वी से मैं बात कर रहा था। समुद्र के किनारे से जोर की हवा चलती
थी, मेरा कोई कसूर भी नहीं था। हवाएं मेरे इस चद्दर को उड़ाने लगीं। वह साध्वी को छू गया। साध्वी को छू गया, तो जैसे उनके प्राण कंप गये। उनका साहस मुझसे कुछ कहने का नहीं हुआ। लेकिन उनके अनुयायी भी साथ थे, उनके बर्दाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने मुझसे कहाः "देखिए, आप अपने चद्दर को रोकिये। साध्वी को पुरुष का कपड़ा छू रहा है!" वह साध्वी मुझसे आत्मा की, परमात्मा की बातें कर रही थी। मोक्ष की बातें कर रही थी। ध्यान की, समाधि की बातें कर रही थी। मेरे चद्दर के छूते ही सारा ध्यान, सारा मोक्ष, सारी आत्मा-परमात्मा विलीन हो गयी। पुरुष का चद्दर छू गया! मैं हैरान हुआ। मैंने कहा, "चद्दर केवल चद्दर है, पुरुष और स्त्री का कैसे हो सकता है? लेकिन पुरुष का चद्दर छूने से अगर भीतर घबड़ाहट पैदा हो आयेगी, तो यह किस बात की खबर है? यह इस बात की खबर है कि सेक्स को दबाया गया है, इतना दबाया गया है कि सारे चित्त में सेक्सुअलिटी भर गयी है, सारी चित्त में कामुकता

भर गयी है। यह चद्दर भी कामुकता का प्रतीक, चिह्नऔर अंग हो गया। इसको छू लेने से भीतर कुछ कंपन होने लगा!
ब्रम्हचर्य का अर्थ है: चित्त की सारी कामुकता का प्रेम में परिवर्तन। लेकिन कोई भी सेक्सुअल माइंड जहां सेक्स काम कर रहा है, जबर्दस्ती ऊपर से ब्रम्हचर्य को थोपेगा। और वह और सेक्सुअल होता चला जायेगा, और सेक्सुअल होता चला जायेगा, कोई भी चीज दमन से नष्ट नहीं होती है। लेकिन हम क्या करें? क्या रास्ता है फिर आदमी के सामने?
जब उसको क्रोध मालूम होता है, तो क्षमा के शास्त्र पढ़ता है, क्षमा की बातें सीखता है। जब उसको लोभ मालूम होता है, तो त्याग की बातें सीखता है, त्याग की कोशिश करता है, मंदिर बनवाता है। जब उसको सेक्स पीड़ित करता है, कामवासना पीड़ित करती है, तो वह "ब्रम्हचर्य ही जीवन है" ऐसी किताबों को पढ़ता है, अध्ययन करता है, साधु और संन्यासियों का सत्संग करता है। फिर वह ब्रम्हचारी होने की कोशिश करता है। लेकिन सेक्सुअल माइंड ब्रम्हचारी कैसे हो सकता हैं? तब तो आप कहेंगे, मैं अगर कह रहा हूं, तो फिर कोई रास्ता नहीं है! रास्ता है। लेकिन रास्ता यह नहीं है, रास्ता कुछ और है। उसकी मैं आपको बात कहना चाहता हूं।
जो व्यक्ति अपने जीवन के तथ्यों में कोई क्रांति लाना चाहता है, तो पहले बुनियादी बात है, उन तथ्यों से भागे नहीं। क्योंकि भागता है कमजोर। बदलाहट के लिए चाहिए ताकतवर। भागता है कमजोर, कावर्ड; और बदलाहट के लिए चाहिए ताकतवर। तो अगर आप अपने जीवन के तथ्यों से भागते हैं, एस्केप करते हैं, यहां-वहां शरण गहते हैं-किसी आदर्श में, किसी नीतिशास्त्र में, किसी धर्मशास्त्र में आकर अपने सिर को छिपाते हैं। जैसे शुतुर्मुर्ग होता है रेगिस्तान में, तो दुश्मन आ जाता है उस पक्षी का, तो जल्दी से अपना सिर रेत में खपा कर खड़ा हो जाता है। जब रेत में खप जाता है, तब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता। तर्क सीधा है, जब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, तो है ही नहीं। लेकिन दुश्मन न दिखायी पड़ने से नष्ट नहीं होता। बल्कि जब दुश्मन आपको नहीं दिखायी पड़ता है, तभी खतरा शुरू होता है, क्योंकि तब दुश्मन के हाथ में आप हो जाते हैं। तब कोई बचाव का रास्ता नहीं रह जाता।
लेकिन हम भी शुतुमुर्ग जैसा ही काम करते हैं। जैसे ही भीतर कोई बात दिखाई पड़ती है और परेशान करती है, तब ही उसके विरोध में सिर खपा कर खड़े हो जाते हैं। सेक्स दिखाई पड़ता है, तो आकर ब्रम्हचर्य की कसमें लेने लगते हैं। पागल हैं! कहीं कसमों से ब्रम्हचर्य दुनिया में हुआ है? और कसम लेने का मतलब क्या है? व्रत लेने का मतलब क्या है? एक आदमी कसम खाता है कि अब मैं ब्रम्हचर्य से रहूंगा, इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है, उसके भीतर सेक्सुअलिटी धक्के दे रही है। उसके खिलाफ वह कसम खा रहा है, नहीं तो कसम क्यों खाता? जो आदमी सच बोलता है, ऐसा कभी कसम खायेगा कि मैं सदा सच बोलूंगा? नहीं खायेगा, क्योंकि वह कहेगा, मैं झूठ बोलता ही नहीं, कसम का कोई सवाल नहीं।
व्रत केवल वे लेते हें, जिनके भीतर विरोधी तत्व धक्के मार रहा है। उसके विरोध में ताकत पैदा करने को, अपनी शक्ति इकट्ठी करने को, समाज का सहारा लेने को चार आदमियों के सामने वे कहते हैं कि मैं ब्रम्हचर्य की कसम खाता हूं। ताकि अब, यह उनके अहंकार का हिस्सा हो जाये कि मैंने ब्रम्हचर्य की कसम खायी हजार लोगों के सामने, कहीं वह टूट न जाये। इस अहंकार को वे खड़ा करते हैं सेक्स के खिलाफ, तब लड़ाई शुरू हो जाती है। उनके दोनों हाथ लड़ने लगते हैं। यहां अहंकार व्रत को सम्हालने की कोशिश करता है, वहां प्रकृति सेक्स के धक्के देती है। तब उनका चित्त द्वंद्व में भरता चला जाता है और टूटता चला जाता है।
कोई ताकतवर व्यक्ति भागता नहीं है, देखता है। मेरा पहला जो निवेदन है विधायक जीवन परिवर्तन की ओर, वह यह है कि तथ्यों से भागें नहीं। लेकिन तथ्यों से आप तब तक भागते ही रहेंगे, जब तक तथ्यों का कण्डेमनेशन आपके मन में है। जब तक आप उनकी निंदा करते हैं, जब तक आप कहते हैं, क्रोध बुरा है, तो फिर आप भोगेंगे। जब तक आप कहते हैं, सेक्स बुरा है, आप भागेंगे। जब तक आप कहते हैं, फलां चीज बुरी है, तब तक उससे आप भागेंगे।

पहली बात है, जीवन के तथ्यों को स्वीकारें। जीवन के तथ्य न तो बुरे
हैं और न भले हैं। जीवन के तथ्य बस तथ्य हैं। जीवन के तथ्य न बुरे हैं और न भले हैं। जीवन के तथ्य बस तथ्य हैं। आपको दो आंखे मिली हैं, न तो यह बुरा है और न यह भला है। यह गिवेन फैक्ट है। ऐसे ही आपको सेक्स मिला है, क्रोध मिला है, लोभ मिला है, अहंकार मिला है, ये भी जीवन के तथ्य हैं। जैसे आपको शरिर की हड्डियां मिली हैं, चमड़ी मिली है, मांस मिला है, ऐसे ही ये तत्व भी मिले हैं। इनको सिर्फ जानें कि ये तथ्य हैं। इनके प्रति अच्छे और बुरे भाव लेना फिर लड़ाई शुरू हो गयी, भागना शुरू हो गया।
पहली बात है, जीवन के तथ्यों को बहुत सहजता से बिना किसी कंडेमनेशन
के, बिना किसी निंदा के, बिना किसी स्तुति के, बिना किसी प्रशंसा के स्वीकार करना, देखना।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं जो कहेंगे, सेक्स ही जीवन है। उन्होंने उस तथ्य की प्रशंसा में अपने मन को जोड़ दिया। एक वे लोग हैं, जो कहेंगे, सेक्स तो मृत्यु है। उन्होंने उसके विरोध में, निंदा में अपने को संलग्न कर लिया है। ये दोनों व्यक्ति उलझ गए। एक तीसरा व्यक्ति है, जिसके होने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। वह तीसरा व्यक्ति न तो जीवन मानता है और न मृत्यु मानता है। न तो अमृत मानता है और न जहर मानता है। वह मानता है, सेक्स है। यह एक तथ्य है। इस तथ्य को मैं जानूं, यह क्या है, क्यों है? इसे पहचानूं, इसकी पूरी शक्ति के भीतर प्रविष्ट हो जाऊं, इसकी सारी पर्तो को खोंदू, इसकी जड़ों तक जाऊं, इससे परिचित तो हो जाऊं कि यह क्या है?
पहली बात है, मन के तथ्यों को तथ्यों की भांति जानें, तटस्थ भाव से जानें। उनकी निंदा में या स्तुति में संलग्न न हो जायें। वे दोनों रास्ते गलत हैं। बीच में ठहरें। इसको मैं संयम कहता हूं। बीच में ठहरने को मैं संयम कहता हूं। ये दोनों असंयम हैं। भोगी एक तरह का असंयमी है, साधु दूसरी तरह का असंयमी है। एक एक अति पर चला गया है, दूसरा दूसरी एक्सट्रीम पर चला गया है। जो मध्य में ठहरता है, वह संयमी है, वह ज्ञानी है।
रुकें! और अपने मन के सारे तथ्यों को जानें, पहचानें कि क्या हैं? घबड़ायें न। घबड़ाहट इसलिए पैदा होती है कि हजारों साल से उसकी निंदा की गई है। निंदा हमारे मन में बैठी है। जब हम देखते हैं अपने भीतर कि क्रोध है मेरे भीतर, अहंकार है हमारे भीतर, तो हम सोचते हैं हम क्या करें! इस अहंकार से छूटने के लिए मैं क्या करूं। हम पूछते हैं, "अहंकार से बचने के लिए मैं क्या कंरू?" कोई कहता है कि घर-द्वार छोड़ दो। कोई कहता है संपत्ति छोड़ दो, कोई कहता है कि वस्त्र छोड़ दो। कोई कहता है कि सब छोड़ दो, पद-प्रतिष्ठा छोड़ दो, अहंकार चला जाएगा। सब छोड़ दें, अहंकार कहीं भी नहीं जाएगा। अहंकार वहीं का वहीं बना रहेगा। वह नई शक्ल ले लेगा। वह तपस्वी का अहंकार बन जाएगा, त्यागी का अहंकार बन जाएगा। वह कहेगा, मैं संन्यासी हूं, मेरे मुकाबले में और कोई संन्यासी नहीं है। वह नये किस्म का अहंकार बन जाएगा। अहंकार ऐसे जा नहीं सकता। अहंकार को जानना होगा। काम को, क्रोध को,
मोह को, लोभ को जानना होगा बड़ी सरलता से। वे हमारे जीवन के तथ्य हैं, जीवन की शक्तियां हैं। उन्हें जानें। और बड़े आश्चर्य की बात है, अगर आप किसी तथ्य के प्रति मात्र सजग होकर उसे खोजें, इस सजगता, इस अवेयरनेस, इस होश के कारण ही उस तथ्य में परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। आपको कुछ करना नहीं होता। अगर एक व्यक्ति चोर है। और वह इस तथ्य को खोजे ठीक से, क्या मैं चोर हूं? न तो इसकी बुराई करे, न इसकी भलाई करे-इस तथ्य को जाने, इससे भागे नहीं। इसको बदलने की कोई फिकर न करे। इस तथ्य को पूरा खोजे और समझ ले कि मैं चोर हूं-बिना किसी विरोध के, और फिर देखे, क्या होता है? अगर यह बोध उसे पक्का हो जाए कि मैं चोर हूं, स्पष्ट हो जाए-बस यह बोध ही परिवर्तन लाना शुरू कर देगा। एक ट्रांसफार्मेशन शुरू हो जाएगा। क्योंकि कोई भी मनुष्य सचेतन रूप से जब जान लेता है, मैं चोर हूं, तो उसकी पूरी आत्मा इस तथ्य को बदलने, इस कुरूप तथ्य को बदलने में संलग्न हो जाती है। उसे खुद कुछ कांशसली नहीं करना होता। उसका अनकांशस माइंड, उसकी अचेतन आत्मा सारी चीजों को बदलने में संलग्न हो जाता है।

लेकिन इस तथ्य को हम स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। तो इससे बचने की तरकीब हम क्या निकालते हैं? हम चोर नहीं हैं, हम तो मंदिर बनवाते हैं, हम कैसे चोर हो सकते हैं? हम चोर नहीं हैं, हम तो रोज मंदिर जाते हैं, हम कैसे चोर हो सकते हैं? हम चोर नहीं, हम तो रोज टीका लगाते हैं, जनेऊ पहनते हैं, हम कैसे चोर हो सकते हैं?
जीवन के तथ्यों से बचने के लिए हम उपाय खोजते हैं। पापी तीर्थयात्रा करते हैं, पापी रोज मंदिर जाते हैं। क्यों? ताकि हम कह सकें कि कौन कहता है कि तुम चोर हो। रोज सुबह मंदिर जाने वाला कहीं चोर हो सकता है? तीर्थयात्रा करने वाला कहीं चोर हो सकता है? लेकिन चोरों के सिवाय कब कौन मंदिर गया है और किसने तीर्थ किया है? जिस आदमी का मन चोरी से मुक्त हो गया, पाप से मुक्त हो गया, वह तीर्थ जाता है? तीर्थ उसके हृदय में आ जाते हैं। वह मंदिर जायेगा? भगवान उसके साथ हो जाते हैं। वह जहां है, वहां मंदिर है। वह जहां है, वहां तीर्थ है। लेकिन तथ्यों से भागते हैं। मैं कहता हूं: तथ्य की स्वीकृति! एक छोटी-सी कहानी कहूं, उससे समझ में आये। बहुत पुराने दिनों की बात है, एक ऋषि हुए गौतम। अपने झोपड़े में बैठे
थे, तभी एक युवक आया। बड़ा सुंदर, स्वस्थ युवक था। उस युवक ने आकर ऋषि गौतम को कहा कि "मैं भी आपके आश्रम में सम्मिलित होना चाहता हूं, मैं भी ज्ञान का प्यासा हूं। मुझे भी सत्य की खोज है। मैं भी ब्रह्म को जानना चाहता हूं। क्या मुझे स्वीकार करेंगे?" गौतम ने कहा, "तेरा गोत्र क्या है, पिता का नाम क्या है?"
उस युवक ने कहा, "मैंने अपनी मां से पूछा था, लेकिन मेरी मां ने कहा कि उसे मेरे पिता का कोई पता नहीं, उसे मेरे गोत्र का भी कोई पता नहीं। क्योंकि उसने मुझे कहा कि जब वह युवा थी, तो वह बहुत से सभ्यजनों में रमती थी और उन्हें रमाती थी। उन्हें प्रसन्न करती थी। उन्हें आनंद देती थी। इसलिए पिता का कोई भी पता नहीं। मैं किससे पैदा हुआ, उसे कुछ पता नहीं है। मेरी मां ने कहा है कि ऋषि को जाकर कह देना कि मेरी मां जब युवा थी, उसने बहुत से लोगों की सेवा की, बहुत से लोगों को प्रसन्न किया। उन बहुत से लोगों में से किसी का मैं पुत्र हूं। मुझे कुछ पता नहीं है। मेरी मां का नाम जाबाली है, मेरा नाम सत्यकाम है, इसलिए मेरी मां ने कहा है, तू यह बता देना कि मेरा पूरा नाम सत्यकाम जाबाल है। मेरे पिता का कोई पता नहीं है।" ऋषि गौतम ने क्या किया? वे उठे, उसी वक्त छाती से लगा लिया। और कहा,
"तू निश्चित ब्राह्मण है क्योंकि इतना सीधा और सच्चा सत्य, जो ब्रह्म का खोजी है उसके सिवाय और किसी से निकलता नहीं। तू ब्राम्हण है, तू स्वीकृत हुआ। इतना सीधा सत्य, तथ्य की ऐसी सीधी स्वीकृति केवल उसी से निकलती है जो ब्रम्ह का खोजी है।"
मैं आपसे कहना चाहूंगाः जो सत्य का खोजी है, उसे तथ्य की सीधी-सीधी
सहज स्वीकृति जरूरी है। उसे छिपाना, उससे भागना घातक है। अपने मन को उघाड़ें, खोलें, अगर जैसा पाएं... और पायें कि कोई गोत्र नहीं है, कोई पिता का कोई पता नहीं तो कोई घबराहट की बात नहीं है। उस तथ्य को वैसा ही स्वीकार कर लें। वहां पायें कि बिल्कुल पशु बैठा हुआ है, उसे भी स्वीकार कर लें। उसमें क्या कसूर है? जैसा हमने पाया है, वैसा वह है। प्रकृति ने वैसा हमें दिया है, वह है; उसे हम स्वीकार कर लें। उस स्वीकृति से देखें कि क्या होगा। स्वीकृति के साथ ही आपके भीतर अभय पैदा हो जायेगा, भय चला जायेगा। भय उसे होता है जो कुछ छिपाता है। जब आप कुछ छिपाते हैं, तो भय होता
है। जब आप कुछ भी नहीं छिपाते और चीजों को सीधा खोल देते हैं, तो फियरलेसनेस पैदा होती है, अभय पैदा होता है। तब आपको कोई भय नहीं रह जाता, क्योंकि उघाड़ने के लिए तो भय होता है कि कोई मेरी नग्नता को न उघाड़ ले। कोई मेरे झूठ को न उघाड़ ले, कोई मेरे सेक्स को न उघाड़ ले। ये सारी सब भय की बातें होती हैं। और अगर मैंने अपने चित्त के सामने खुद सब उघाड़ लिया है, तो भय के सारे बिंदु विलीन हो जाते हैं। फियरलेसनेस पैदा होती है। अभय, साहस पैदा होता है।
और जब मैं सारे तथ्यों को उघाड़ता हूं, उघाड़ने के साथ ही साथ, वह जो ग्लानि का भाव होता है, वह जो एक आत्मा में ग्लानि का भाव होता है कि यह

बुरा मेरे भीतर है, वह विसर्जित हो जाता है। क्योंकि उघाड़ कर मैं पाता हूं, उघाड़ते-उघाड़ते ही इस बात का दर्शन होता है कि वे तथ्य अलग हैं और मैं जो उघाड़ रहा हूं, अलग हूं, पृथक हूं। स्वयं की चेतना की पृथकता का बोध स्पष्ट होता है। और जब कोई तथ्य बहुत ज्यादा पीड़ादायी मालूम होता है, जो अर्थहीन मालूम होता है, एब्सर्ड मालूम होता है, मीनिंगलेस मालूम होता है, जिसमें कोई अर्थ नहीं मालूम होता, उसकी जब पूरी तलहटी को कोई व्यक्ति उघाड़ कर देखता है, तो इस देखने के द्वारा ही उस तथ्य में परिवर्तन होता है।
बोध, अवेयरनेय, अपने मन की सारी प्रक्रियाओं के प्रति सजगता, अग्नि
की तरह काम करती है। अगर हम अग्नि को जला दें, तो कूड़ा-कर्कट जल जायेगा और जो सोना है, खालिस सोना, वह बाकी रह जायेगा। होश, चीजों को देखने की सामर्थ्य है। और चीजों पर दृष्टि ले जाना अग्नि की भांति है। जब हम अपने भीतर सब चीजों को जानकर देखना शुरू करते हैं, तो एक आग लग जाती है मन में। उस अग्नि में जो-जो कचरा है, वह जलने लगता है और जो-जो स्वर्ण है, वह निखरने लगता है। एक दिन जब सब कचरा जल जाता है, अग्नि में समाप्त हो जाता है, खालिस सोना, स्वर्ण भीतर रह जाता है।
इस अग्नि को जलाना-होश की अग्नि को। लेकिन भागे हुए लोग उसे नहीं जला सकते हैं। एस्केप किये हुए लोग उसे नहीं जला सकते हैं। एस्केप बहुत तरह की हैं। एक आदमी शराब पीने लगता है, अपने तथ्यों से घबड़ा जाता है। एक आदमी जुआ खेलने लगता है, अपनी बेचैनी से घबड़ा कर जुए पर दांव लगाता है, सब भूल जाता है। उस दांव के तीव्र क्षण में, उस सेंसेशन की स्थिति में सब विस्मृत हो जाती हैं चिंताएं, दुख, पीड़ाएं। एक आदमी शराब पी लेता है और भूल जाता है। एक आदमी मंदिर के कोने में बैठ कर राम-राम जपने लगता है। राम-राम जपता ही जाता है जोर-जोर से, जोर-जोर से। जितने जोर से राम जपता है उतनी जोर से चिंताएं भूल जाती हैं, उतनी देर के लिए चिंताएं विलीन हो जाती हैं। और फिर निरंतर राम-राम जपने से, या ओम जपने से, कोई भी मंत्र जपने से, मन की जो संवेदनशीलता है, जागृति है, वह कम हो जाती है। अगर मैं एक घंटे तक यहां एक ही वाक्य बोलता रहूं, तो कितने लोग हैं, जो जगे रह जायेंगे? अधिक लोग सो जायेंगे-स्वभावतः।
एक अदालत में एक मुकदमा चलता था। जो वकील अपने पक्ष के संबंध में बोल
रहा था, उसके बोलने का ढंग कुछ ऐसा मोनोटोनस था, कुछ ऐसा एकसुरा था, और वह कुछ एक ही की बात और कानून की एक ही दलीलें इस भांति दोहराता था कि अक्सर सब जूरी सो जाते थे। एक दिन वह समझा रहा था कोई घंटे भर से, करीब-करीब सब जूरी सो गये थे। जिसके पक्ष में वह बोल रहा था, वह कैदी भी अपने कठघरे पर सिर रख कर सो रहा था। उसने चिल्ला कर मजिस्ट्रेट को कहा कि "महानुभाव, यह क्या, कैसी अदालत है? सब जूरी सोये हुए हैं!" उस मजिस्ट्रेट ने कहाः "मुझे क्षमा करें, मैं खुद गुनहगार हूं, क्योंकि बीच-बीच में मैं खुद ही सो जाता हूं। लेकिन महाशय इसमें हम अकेले जिम्मेवार नहीं हैं, आप भी जिम्मेवार हैं। आप कुछ ऐसी तरकीब करें कि लोगों की नींद खुल जाये। आप कुछ ऐसी बातें बोंले कि लोगों की नींद उचट जाये।"
एक मां को अपने बच्चे को सुलाना होता है वह एक कड़ी उठा लेती है--"सो जा मुन्ना, सो जा मुन्ना" कहती चली जाती है। मां को यह भ्रम होता है कि बड़ा ऊंचा संगीत है, इसलिए मुन्ना सो रहा है! मुन्ना बोर्डम की वजह से सोये जा रहा है। जब बार-बार "सो जा मुन्ना, सो जा मुन्ना" किसी से भी कहिएगा तो मुन्ना क्या, मुन्ने के पिता भी सो सकते हैं। घबड़ा जायेंगे न! बोर्डम, किसी चीज की ऊब, घबराहट, किसी को भी सुला देगी।
एक आदमी राम-राम जप रहा है। एक आदमी ओम-ओम जपे जा रहा है। यह जपने से
ऊब पैदा होती है, बोर्डम पैदा होती है। माइंड शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे डल हो जाता है। यही वजह है कि जिन-जिन मुल्कों ने राम-राम, ओम-ओम जपा, उनका माइंड बिल्कुल डल हो गया। उनसे कुछ पैदा नहीं हो सका। उनसे कोई अविष्कार नहीं हो सका। उनकी प्रतिभा सुस्त, काहिल और कुंद हो गयी, खत्म हो गयी। उनकी संस्कृति टूट गयी क्योंकि कुंद मस्तिष्क कुछ पैदा कर सकते हैं? लेकिन शांति मिल जाती है, क्योंकि नींद से किसको शांति नहीं मिलती? नशा पीने से किसको शांति नहीं मिलती? राम-राम जप रहे हैं, चिंताएं मिट गयीं। चिंता के

लिए भी तो सजग मन चाहिए न! मूढ़ मन को चिंता नहीं होती। जड़-बुद्धि को चिंता भी नहीं होती। चिंता व्यापने के लिए भी तो होश चाहिए। ये सब एस्केप हैं, ये सब तरकीबें हैं अपने जीवन को भूल जाने की।
नहीं, यह कोई भी धार्मिक नहीं है। धर्म है-जीवन को भूलना नहीं, जीवन
की पूरी स्मृति; विस्मृति नहीं-स्मृति। अपने मन की, अपनी चेतना की सारी पर्तो का होश। एक-एक पर्त पर होश को ले जाना है। जागना है, देखना है, मेरे भीतर क्या है। भागना नहीं है। भागता हुआ आदमी अधार्मिक है, जागता हुआ आदमी धार्मिक है।
धर्म का मेरी दृष्टि में एक ही अर्थ है: जागरण की सतत चेष्टा। तो जागें और देखें। और फिर देखें कि एक ट्रांसफार्मेशन आता है, जो आपका लाया हुआ नहीं है। क्योंकि आप तो सिर्फ जागते थे, आप तो देखते थे कि मेरे भीतर चोरी है।
प्रयोग करें, क्योंकि मैं जो कर रहा हूं, वह सैद्धांतिक बकवास नहीं
है। उससे तो मुल्क भरा हुआ है, उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मैं कोई उपदेश नहीं दे रहा हूं आपको। क्योंकि जिसका दिमाग खराब नहीं हुआ है वह किसी को काहे उपदेश देगा? मुझे तो जो बात दिखायी पड़ती है, वह आपसे कह रहा हूं। यह नहीं कि आप मान लें, बल्कि इसलिए कि आप थोड़ा देखें, प्रयोग करके देखें। अगर ठीक लगेगी, तो वह आपको खुद ठीक लगेगी; वह आपकी अनुभूति होगी। उससे मेरा कोई संबंध नहीं होगा।
देखें अपने भीतर किसी तथ्य को। एक तथ्य को पकड़ लें और देखें फिर देखें कि वह तथ्य टिकता है या जाता है! जब आप बहुत सजगता से किसी भी एक तथ्य को पकड़ लेंगे, हिंसा का पकड़ लेंगे, मेरे मन में हिंसा है... और अहिंसक होने की कोई चेष्टा न करें। क्योंकि अहिंसक होने का मतलब है कि अहिंसा से आपने मुंह चुराना शुरू कर दिया। नहीं, उस हिंसक होने को स्वीकार कर लें कि मेरी हिंसा है, ठीक है। अब मैं इस हिंसा के तथ्य के साथ जीऊंगा। देखूं क्या होता है! अब मैं इस तथ्य के साथ रहूंगा। देखूं, क्या होता है।
चौबीस घंटे जागे हुए रहें कि हिंसा है। जब मैं चपरासी से अभद्र शब्द बोला, तब हिंसा थी। जब मैं पत्नी से बेहूदी बात बोला, तब हिंसा थी। जब मैं बच्चे का कान पकड़ा, तब हिंसा थी। देखें, चौबीस घंटे, कहां-कहां हिंसा है! जब मैं किसी से प्रतिस्पर्धा कर रहा हूं, तब हिंसा है। जब मैं बड़ा मकान बना रहा हूं पड़ोसी के छोटे मकान को छोटा करने के लिए, तब हिंसा है। मैं देखूं अपनी सारी हिंसा को। चौबीस घंटे जो मेरे जीवन के संबंध हैं उसमें देखूं कि कहां हिंसा है। और चुपचाप उसे देखूं, कुछ करने की जरूरत नहीं है। और आप देखते-देखते हैरान हो जायेंगे। आपको जैसे-जैसे बोध होगा कि हिंसा है, वैसे-वैसे आप पायेंगे कि हिंसा विलीन हो रही है और हिंसा की जगह कोई एक नया तत्व आ रहा है, जो अहिंसा का है।
चूंकि हम देखते नहीं, इसलिए हिंसा जिंदा है। हमारी मूर्च्छा हिंसा
का प्राण है। अगर हम जायेंगे और देखेंगे तो हिंसा की मृत्यु हो जायेगी। जीवन में जो भी अशुभ है, वह हमारी मूर्च्छा के कारण जिंदा है। हम बेहोश हैं, इसलिए वह जिंदा है, इसलिए उसमें प्राण हैं। प्राण कौन दे रहा है? हम दे रहे हैं। मूर्च्छा के कारण उसको हम ही प्राण दे रहे हैं, उसको हम ही शक्ति दे रहे हैं, हम ही वाइटालिटी दे रहे हैं। हमारी ही एनर्जी वह पी रहा है। लेकिन अगर हम जाग जायें, तो अपने आप हमारी शक्तियां उससे दूर हटती जायेंगी। हम उसी क्षण सजग हो जायेंगे।
एक मित्र हैं, उन्होंने मुझसे कहा, "बहुत क्रोध आता है। मैं क्या करूं? मैं बहुत तरकीबें कर चुका, क्रोध तो जाता नहीं। क्रोध से मेरा जीवन खराब होता जाता है।" मैंने उनसे कहा, "आप एक छोटा सा काम करें। कागज पर लिख कर रख लें कि अब मुझे क्रोध आ रहा है और उसे हमेशा खीसे में रखें। जैसे ही क्रोध आये, कृपा करके उसे निकाल कर पढ़ें और फिर रख लें। फिर मुझे महीने भर बाद आकर कहें।" वे महीने भर बाद आये, बोले, "हैरान हूं मैं। क्रोध आता है, मेरा हाथ खीसे की तरफ गया, तो मुझे लगता है कि क्रोध तो हवा हो गया!"
किसी भी तथ्य को आप जागकर देखें। आपका जागरण तथ्य की मौत है। और जब तथ्य मर जाता है, तो उस तथ्य में जो शक्ति आपकी खर्च हो रही थी, वह रिलीज

होती है। आखिर क्रोध में शक्ति नष्ट हो रही है, लोभ में शक्ति नष्ट हो रही है, प्रतिस्पर्धा में, घृणा में शक्ति नष्ट हो रही है, द्वेष में, ईर्ष्या में शक्ति नष्ट हो रही है। अगर ये सारे तथ्य विलीन हो जायें, तो एक अद्भुत शक्ति का रिलीज होगा। इनकी सारी शक्ति इकट्ठी हो जायेगी। वही शक्ति आपकी आत्मा को बल देगी। वही शक्ति आपकी आत्मा का ऊर्ध्वगमन बन जायेगी।
जो शक्ति क्रोध में नष्ट होती है, लोभ में नष्ट होती है, जो शक्ति अहंकार में नष्ट होती है, वही बच जाये, तो वही ऊर्जा परमात्मा तक ले जाने का मार्ग बन जाती है। वही ऊर्जा परमात्मा तक ले जाने की सीढ़ी बन जाती है। लेकिन भाग कर कोई दुनिया में कभी क्रांति नहीं होती।
फिर इस भांति जागरण से जो क्रांति होती है, यह जो ट्रांसफार्मेशन होता है, यह आपका लाया हुआ नहीं है, क्योंकि आप तो केवल जागे हैं, आप तो केवल जागे थे। ट्रांसफार्मेशन तो अपने से आता है। आप जागें, सत्य अपने से आता है। मनुष्य जागे, सत्य का आगमन अपने से होता है। मनुष्य जागे, परमात्मा उसे खोजता हुआ उसके द्वार चला आता है। लेकिन जागने की बात है। पूरी तरह जागने की बात है। और इसलिये जागना ही एकमात्र तथ्य है, एकमात्र तपश्चर्या है। जागना ही एकमात्र श्रम है, संकल्प है, साधना है, जो मनुष्य करे तो उसके भीतर एक बिल्कुल अभिनव व्यक्ति का जन्म हो जायेगा। एक ऐसे व्यक्ति का, जिसे उस शांति का पता चलेगा जो सनातन है, अनादि है। जिसे उस सन्नाटे का अनुभव होगा, जो परमात्मा के हृदय में है। जिसे उस आनंद की किरणें उपलब्ध होंगी, जो इस सारी विराट सृष्टि के केंद्र में छिपा हुआ है। उसे उस अमृत का सागर उपलब्ध हो जायेगा, जो कि सारे अस्तित्व में रमा हुआ है। लेकिन व्यक्ति टूट जायेगा। उसके तथ्य सब बदल जायेंगे, सिर्फ होश रह जायेगा और अंततः होश की लपट उसे परमात्मा की ज्योति से मिला देगी। विधायक रूप से क्या किया जा सकता है, हम क्या कर रहे हैं? हम भाग रहे हैं, भागते चले जा रहे हैं। नहीं, भागना नहीं है-रुकना है। ठहरें और देखें और जागें। और अपने को बदलने की कोई फिकर न करें, बदलाहट आयेगी, बदलाहट आपके हाथ का काम नहीं हो सकती। क्योंकि आपका जो कनफ्यूज्ड दिमाग है, आपका जो द्वंद्वग्रस्त मन है, आपका जो बेहोश मन है यह क्या बदलाहट लायेगा! क्या बदलाहट हो सकती है? अगर यह बदलाहट ला सकता, तब तो कहना ही क्या था। और अगर यह कोई बदलाहट ले भी आयेगा, तो क्या वह बदलाहट इस मन से बेहतर हो सकती है? जो मन बदलाहट लायेगा, बदलाहट इस मन से नीची होगी, इस मन से ऊंची नहीं होगी। कैसे हो सकती है? बनाने वाले से बनायी गयी चीज कहीं बड़ी हो सकती है? क्रिएशन कहीं क्रिएटर से बड़ा हो सकता है? तो आपका माइंड जिस वायलेंस से बच कर नॉन-वायलेंस को पैदा करेगा, हिंसा से बच कर अहिंसा पैदा करेगा, वह आपके दिमाग से बड़ी हो सकती है? नहीं हो सकती। वह आपके दिमाग से छोटी होगी। जब आपका दिमाग ही छोटा है, जब मेरा दिमाग ही छोटा है, जब मेरा दिमाग हिंसा से, क्रोध से, वासना से भरा हुआ है, तो इससे धर्म कैसे पैदा हो सकता है? नहीं, इससे कोई धर्म पैदा नहीं हो सकता। इससे जो धर्म पैदा होगा वह इसी तरह का धर्म होगा--क्रोध का धर्म होगा, पाप का धर्म होगा, अहंकार का धर्म होगा। वह धर्म इस मन से बड़ा नहीं हो सकता। जो चीज जिससे पैदा होती है, उससे बड़ी कभी नहीं हो सकती।
फिर क्या रास्ता है? इस मन से कोई रास्ता नहीं है। इस मन से कुछ हो नहीं सकता। लेकिन एक बात है, इस मन के प्रति जागा जा सकता है। जो जागता है, वह मन से अलग है। जो होश से भरता है, वह मन के पीछे है। और अगर वह होश से पूरा भर जाये, तो उसका होश इस मन में क्रांति लाना शुरू कर देता है। एक छोटी सी कहानी, अपनी चर्चा को मैं पूरा करूं।
एक फकीर था। एक युवक उसके पास गया और उसने कहा कि मैं तो चोर हूं, मैं
तो बेईमान हूं, मैं तो झूठ बोलने वाला हूं। लेकिन मैं भी परमात्मा को पाना चाहता हूं। मैं क्या करूं? और मैं जिस साधु के पास गया उसने कहाः "पहले झूठ छोड़ो, पहले बेईमानी छोड़ो फिर मेरे पास आना!" उस फकीर ने कहाः "तुम गलत लोगों के पास पहुंच गये, जिन्हें कुछ भी पता नहीं। तुम ठीक ही हुआ कि यहां आ गये। और मैं खुश हूं कि तुम यह स्वीकार करते हो कि तुम चोर हो, तुम बेईमान हो। यह धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है कि वह स्वीकार करता है कि वह चोर है,

वह बेईमान है, वह झूठ बोलता है। अब कुछ हो सकता है। तुम्हारी तैयारी पूरी है। लेकिन इन्हें छोड़ना मत, छोड़ने की फिकर में मत पड़ जाना, नहीं छोड़ने कि फिकर में ये बन जायेंगे। फिर तुम भागते रहोगे, और ये बचे रहेंगे। जब तुम रुकोगे, तब तुम पाओगे कि ये मौजूद हैं। ये कहीं भी नहीं जायेंगे। क्योंकि तुम अपने को छोड़ कर कहां भाग सकते हो?"
उसने एक छोटी सी कहानी उस युवक को कही। उसने कहा कि एक आदमी एक दूसरे गांव के दरवाजे पर पहुंचा। उस गांव के दरवाजे पर एक बूढ़ा आदमी बैठा था। उसने उससे पूछा, "इस गांव के लोग कैसे हैं?" उस बूढ़े ने कहा, "मैं यह पूछूं कि आप किसलिए यह पूछते हैं? क्या यहां बसना चाहते हैं? यदि बसना चाहते हैं तो बतायें, आप जिस गांव को छोड़ कर आ रहे हैं, वहां के लोग कैसे थे?" उस आदमी ने कहा, "उस गांव के लोगों का नाम भी मत लो। वैसे दुष्ट, वैसे पाजी लोग इस संसार में कहीं भी नहीं हैं!" उस बूढ़े ने कहा, "तब आप किसी और गांव में बसें। आप पाएंगे, इस गांव के लोग उस गांव से भी ज्यादा दुष्ट हैं। यह तो बहुत ही खराब गांव है। मेरा अनुभव यह है कि इस गांव जैसे आदमी उस गांव में भी न होंगे। तुम जाओ, कहीं और बस जाना।"
वह हटा। उसके पीछे एक दूसरा आदमी पहुंचा। उसने भी पूछा, "मैं इस गांव में बसना चाहता हूं"--उस बूढ़े आदमी से--"इस गांव के लोग कैसे हैं?" उस बूढ़े ने कहाः "पहले मैं यह पूछ लूं कि तुम जिस गांव से आते हो, उस गांव के लोग कैसे थे?" उसने कहाः "उनका तो नाम ही मेरे हृदय को आनंद से भर देता है। उतने भले लोगों को छोड़ कर मजबूरी में मुझे आना पड़ा। इसके लिए मेरा हृदय सदा दुखी रहेगा।" उस बूढ़े ने कहाः "आओ, तुम्हारा स्वागत है। तुम पाओगे, इस गांव के लोग तो उस गांव से भी बेहतर हैं। इस गांव जैसे लोग तो हैं ही नहीं जमीन पर!"
उस फकीर ने उस युवक को कहाः यह कहानी मैं तुमसे कहता हूं। तुम कहीं भी भाग जाओ, तुम कहीं भी चले जाओ, तुम अपने को छोड़ कर नहीं जा सकते हो। तुम जो हो वह तुम्हारे साथ है। और उसकी शक्ल तुम्हें दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती है। और क्या दिखाई पड़ता है?
आप सब एक-दूसरे के लिए दर्पण हैं। एक-दूसरे में अपनी शक्ल झांक लेते हैं। तो तुम कहीं भी चले जाओ, तुम अपने से नहीं भाग सकते। लेकिन एक काम करना, तुम अपने प्रति जाग सकते हो। तुम एक काम करना कि जब भी तुम्हारे मन में चोरी का, बेईमानी का ख्याल आये, तो तुम होश से करना। चोरी करना, होश से करना। किसी का ताला तोड़ने जाओ, तो बेहोशी में मत तोड़ना; पूरे होश से कि मैं ताला तोड़ रहा हूं, चोरी कर रहा हूं। सजगता से ताले को तोड़ना। जैसे ही मूर्च्छा आ जाये, वहीं ताला छोड़ देना। होश आये, फिर ही ताला खोलना। मूर्च्छा में ताला मत खोलना। पूरी तरह जागे हुए होकर ताला तोड़ना, जागे हुए से तिजोड़ी से रुपये निकालना।
वह युवक पंद्रह दिन बाद लौटा। उसने कहाः "यह तो बड़ी मुसीबत हो गयी। जब मैं पूरे होश से भरा होता हूं, तो मेरा हाथ रुपये उठाने को नहीं बढ़ता। और जब मैं बेहोश होता हूं, तब मेरा हाथ बढ़ता है। आपने तो बड़ी मुश्किल कर दी! मैं दो दिन बहुत बढ़िया खजाने छोड़ कर आया। तोड़ ही ली थीं दीवालें, पहुंच गया था, तिजोड़ियां खोल ली थीं। हाथ उठता था, ख्याल आता था; चोरी होशपूर्ण करनी है। होश जैसे जागता था, चोरी विलीन हो जाती थी।"
जैसे हम यहां दीयां जला दें, तो अंधेरा विलीन हो जाता है। दीये के साथ अंधेरा विलीन हो जाता है। दीया बुझा दें, अंधेरा आ जाता है। ठीक वैसे ही होश जगायें, सारी विकृति विलीन हो जाती है। दीया बुझा दें, विकृति लौट आती है।
होश आत्मा का दीया है। वही ध्यान है, उसी को मैं मेडिटेशन कहता हूं।
होश ध्यान है। निरंतर अपने जीवन के प्रति, सारे तथ्यों के प्रति जागे हुए होना ध्यान है। वही दीया है, वही ज्योति है। उसको जगा लें और फिर देखें, पाएंगे, अंधेरा क्रमशः विलीन होता चला जा रहा है। एक दिन आप पायेंगे, अंधेरा है ही नहीं। एक दिन आप पाएंगे, आपके सारे प्राण प्रकाश से भर गये-और एक ऐसे प्रकाश से, जो अलौकिक है। एक ऐसे प्रकाश से, जो परमात्मा का है। एक ऐसे प्रकाश से, जो इस लोक का नहीं, इस समय का नहीं, इस काल का नहीं, जो कहीं

दूरगामी, किसी बहुत केंद्रीय तत्व से आता है। और उसके ही आलोक में जीवन नृत्य से भर जाता है, संगीत से भर जाता है। तभी शांति है, तभी सत्य है। उसके पूर्व सब भटकन है, सब अंधेरा है। उस अंधेरे में आप कुछ भी करें, कुछ भी न होगा। दीये को जलायें, फिर दीया ही कुछ करेगा। दीये को जलाएं, फिर दीया ही कुछ करेगा। ज्योति को जगायें होश की, फिर होश ही कुछ करेगा। होश क्रांति ले आता है।
तोड़ने और बनाने का साहस जिस व्यक्ति में है, वह कभी भी अपने जीवन को
एक अदभूत जीवन में परिवर्तित कर सकता है। परमात्मा करे, आपका जीवन एक ज्योति बने, एक जीती हुई ज्योति। आपके ही लिए केवल यह जरूरी नहीं है, इस वक्त सारा मनुष्य संकट में है, सारा मनुष्य पीड़ा में है। अगर बहुत से लोगों के हृदय जग जायें और ज्योति बन जायें, तो इस सारे जगत से अंधकार दूर हो सकता है, एक नई संस्कृति पैदा हो सकती है, जो धार्मिक होगी।
अभी तक कोई धार्मिक संस्कृति पैदा नहीं हो सकी। अभी वस्तुतः धर्म ही पैदा नहीं हो सका। अभी धर्म के नाम से चर्च पैदा हुए, संपद्राय पैदा हुए। अभी धर्म पैदा नहीं हुआ। अभी मनुष्य के हृदय में धर्म की ज्योति नहीं जगी। अभी समय है। बहुत लोगों को श्रम करना होगा--उनके खुद के हित में भी और सारे मनुष्य के हित में भी। उसमें ही कल्याण है। अगर हम एक संस्कृति को पैदा कर सकें, जो कि धार्मिक हो... । वह कैसी होगी। धार्मिक मन कौन सा है? जिसके भीतर होश की ज्योति जगी है, वह धार्मिक मन है।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम, इतनी शांति से सुना है, उससे बहुत-बहुत आनंदित और अनुगृहीत हूं, और आप सबके चरणों में प्रणाम करता हूं; क्योंकि कोई चरण किसी का नहीं, सभी चरण परमात्मा के हैं।

पंथ प्रेम को अटपटो
चौथा प्रवचन

स्वयं का साक्षात

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक बहुत पुराने नगर में एक बहुत पुराना चर्च था। उस चर्च की दीवालें गिरनी शुरू हो गई थीं। उस चर्च के नीचे खड़ा होना खतरनाक था। उस चर्च में आने वाले लोगों ने धीरे-धीरे आना बंद कर दिया। उस बड़े भवन के पास से निकलना भी खतरे की बात थी। वह भवन किसी भी क्षण गिर सकता था। हवाओं के छोटे झोंके भी उस भवन को कंपा देते थे और वर्षा में जब बादल गरजते और बिजलियां चमकतीं, तो नगर के लोग बार-बार सोच लेते कि शायद वह चर्च गिर गया है।
अंततः उस चर्च के संयोजकों, संरक्षकों की कमेटी की बैठक हुई, उन्होंने कुछ प्रस्ताव पास किये। उनका पहला प्रस्ताव था कि पुराने चर्च को गिरा दिया जाना चाहिए। सभी इस पर सहमत थे। उनका दूसरा प्रस्ताव था कि नया चर्च बनाया जाना चाहिए। इससे भी सभी लोग सहमत थे। उनका तीसरा प्रस्ताव था कि पुराने चर्च के सामान से ही नया चर्च बनाया जाना चाहिए। इस पर भी सभी लोग सहमत थे। और चौथा प्रस्ताव था, जब तक नया चर्च बन जाए, तब तक पुराना चर्च नहीं गिराया जाना चाहिए। इस पर भी सभी सहमत थे।
दुनिया में भी मनुष्य के मन का मंदिर बहुत पुराना हो गया है। उसके गिर जाने की प्रतिक्षण संभावना है। हर बार जरा सा संकट आता है, पूरी मनुष्य-जाति खतरे में पड़ जाती है। बहुत बार मनुष्य को बचाने वाले लोग इकट्ठे हुए हैं और उन्होंने भी ये चार ही प्रस्ताव पास किये हैं। मैं उन प्रस्तावों पर ही आज सुबह आपसे और विचार करना चाहता हूं।
पहले दो प्रस्ताव तो ठीक हैं। पुराना मंदिर जरूर गिरा दिया जाना चाहिए, नया मंदिर जरूर बनना चाहिए। लेकिन पुराने मंदिर के ईंटों से न कभी नया मंदिर बना है और न बन सकता है। क्योंकि पुरानी ईंटों से बना हुआ मंदिर नया नहीं होगा, पुराना ही होगा। वह पुराने का ही रूपांतरण होगा। वह जीर्ण-जर्जर पुराना मंदिर ही फिर नये मंदिर में स्थापित हो जाएगा। पुराने से खतरा है, पुराना फिर जीवित बना रहेगा। पुराने से खतरा है, पुराना फिर जीवित बना रहेगा। नया मंदिर अगर उन्हीं ईंटों से बना, तो वह देखने में ही नया होगा। उसके प्राण पुराने होंगे, उसकी आत्मा पुरानी ही होगी।
तीसरे प्रस्ताव से मैं सहमत नहीं हूं। और चौथा प्रस्ताव तो अत्यंत मूर्खतापूर्ण है कि जब तक नया न बन जाए, तब तक पुराने को नहीं गिराना चाहिए। क्योंकि जिस भूमि पर पुराना खड़ा है, उसी भूमि पर नये को बनाना है। पुराने की मृत्यु ही नये का जन्म बन सकती है। पुराने का अंत ही नये का प्रारंभ होगा। पुराने का विध्वंस ही नये का सृजन बनता है। और जो लोग तोड़ने में कमजोर हो जाते हैं, वे बनाने में भी असमर्थ हो जाते हैं। जिनकी मिटाने की क्षमता क्षीण हो जाती है, उनके निर्माण करने की शक्ति भी विलीन हो जाती है। और तब फिर उन्हें उसी पुराने मंदिर में रहना पड़ता है जिसके प्रतिपल गिर जाने का खतरा है और जिसके साथ स्वयं की मृत्यु भी बनी हुई है।
मनुष्य ऐसे ही पुराने मंदिर में जी रहा है। हम सब भी ऐसे ही पुराने मंदिर के वासी हैं। और जब तक हम इस पुराने मंदिर में हैं, तब तक निर्भय नहीं हो सकते हैं। तब तक न हम रात शांति से सो सकते हैं और न दिन चैन से बैठ सकते हैं। हर क्षण उसके गिरने का खतरा बना हुआ है।
यह जो मनुष्य के मन का पुराना मंदिर है, यही मनुष्य की बीमारी, रोग, रुग्णता और विक्षिप्तता है। और अब तक हम पुराने की इतनी पूजा करते रहे हैं कि नये का जन्म कठिन से कठिन हो गया है। सचाई यह है कि पुराने को हमेशा विदा हो जाना चाहिए, प्रतिपल पुराना विदा हो जाना चाहिए। इन चारों तरफ लगे वृक्षों पर हर वर्ष नये पत्ते आते हैं, क्योंकि पुराने पत्ते विदा हो जाते हैं। अगर पुराने पत्ते यह जिद्द करें कि हम बने रहेंगे, तो नये पत्तों के जन्म की कोई संभावना न रह जाये। पुराने मनुष्य विदा हो जाते हैं, इसलिए नये मनुष्य विकसित होते हैं। पुराना रोज विलीन होता है, इसलिए नये का प्रादुर्भाव होता है।

लेकिन मनुष्य के मन ने पुराने से कुछ ऐसे प्रगाढ़ बंधन कायम कर लिये हैं कि मनुष्य के मन से पुराना विदा नहीं होता है, इसलिए मनुष्य के चित्त में नये का जन्म नहीं हो पाता है। और जिस मनुष्य के चित्त पर नये का जन्म नहीं होता, वह केवल भ्रांति में है कि जी रहा है। वह असल में, बहुत पहले मर चुका है। पुराने का कोई जीवन नहीं है। जीवन तो नित नया है, वही है। जो प्रतिपल नया होता है, वही जीवन है। जिसके नये होने की प्रक्रिया बंद हो जाती है, वह मर चुका है।
तो मैं आपसे पुछना चांहूगा इस सुबह, आप मर चुके हैं या कि जीवित हैं? आपके चित्त में नये होने की क्षमता खो गई है, या कि कायम है? आप नये हो सकते हैं या कि पुराने से इस भांति बंध गए हैं कि नये होने का कोई द्वार खुला नहीं रह गया है? आपके चित्त में प्रतिक्षण, प्रतिपल नये और युवा होने की शक्ति बची है या नहीं? इसे सोचना होगा, इसे विचारना होगा। और अगर पुराने मृत, जरा-जीर्ण पत्थर बहुत इकट्ठे हो गये हों, तो उन्हें विदा कर देना होगा। अगर पुराना मकान रहने योग्य न रह गया हो और मृत्यु का कारण बन रहा हो, तो उसे गिरा देना होगा।
इस बात का पूरा-पूरा बोध ही मनुष्य को सत्य की, जीवन की और परमात्मा की दिशा में अग्रसर करता है। क्योंकि परमात्मा कभी भी पुराना नहीं है, जीवन कभी भी पुराना नहीं है। सत्य कभी भी पुराना नहीं है। सत्य सदा नया है। सत्य सदा युवा है। और हम? हम पुराने पड़ जाते हैं। इसलिए हमारा कोई मेल सत्य से नहीं हो पाता है। हो भी नहीं सकता। हम मृत हो जाते हैं। हम अतीत और बीते को, गये को, जा चुके को, परमात्मा को छाती से लगा कर बैठ जाते हैं। हम लाशों को सिर पर ढोने लगते हैं। फिर हमारा जीवन से कैसे संबंध रह जायेगा! किसी घर में, जितने लोग मर जाते हों, सबकी लाशें सुरक्षित रख ली जाती हों, तो उस घर में फिर कोई जीवित रह सकेगा? उस घर में जीवित को भी मर जाना पड़ेगा। लाशों के बीच जिंदा आदमी जीवित नहीं रह सकता। लेकिन हमारे मन पर बहुत मुर्दा लाशें इकट्ठी हो गयी हैं और उन सबके बीच हमारा मन एक मरघट की भांति हो गया है। और इस मरे हुए मन को लेकर अगर हम सोचते हों कि जीवन के राजा से, जो सदा नया और जवान है, परमात्मा से, प्रभु से हमारा मिलन हो जाये, तो हम भूल में हैं, गलती में हैं। उस नित-नवीन से मिलने के लिए हमें भी नया हो जाना पड़ेगा। हमें भी अपने को नया कर लेना होगा।
पुराने से मुक्त होना जरूरी है, और नये के मंदिर का निर्माण भी। लेकिन पुराने मंदिर की ईंटों से नया मंदिर नहीं बन सकता। और अगर यह भी शर्त लगी हो कि उसी मंदिर की ईंटों से नये को बनाना है और नये को बना कर ही पुराने को गिराना है, तब तो असंभव हो गयी बात। फिर तो कोई गति इस दिशा में नहीं हो सकती।
तो पहले तो हम यह समझ लें कि हमारा चित्त पुराना किन बातों से हो जाता है। क्योंकि अगर ठीक से यह ख्याल में आ जाये कि चित्त क्यों पुराना हो जाता है, तो नया हो जाना बहुत सरल है, क्योंकि कोई भी न तो पुराना होना चाहता है। आप बूढ़े होना चाहते हैं? पुराने होना चाहते हैं? मृत्यु चाहते हैं? कोई भी नहीं चाहता। लेकिन शायद भूल से, जिसे हम नया समझते हैं, जीवन समझते हैं, वह भीतर पुराना होता है और इसलिए हम उसे पकड़े बैठे होते हैं। तो पहले तो यह खोज कर लेनी जरूरी है कि मनुष्य का मन पुराना क्यों हो जाता है? किन बातों से, किन कारणों से? एक बात: सीखा हुआ ज्ञान मनुष्य के मन को पुराना कर देता है। जाना हुआ ज्ञान मनुष्य के मन को नया करता है। जो भी हम सीख लेते हैं और इनफार्मेशन की तरह, सूचना की तरह संगृहीत कर लेते हैं, उससे हमारा मन पुराना पड़ जाता है। क्योंकि जिस ज्ञान को हम बाहर से सीख कर इकट्ठा करते हैं, चाहे शास्त्रों से, चाहे गुरुओं से, चाहे परंपराओं से--जिसको भी हम सीख कर इकट्ठा कर लेते हैं, सीखा हुआ ज्ञान कभी भी हमारा प्राण नहीं बनता। केवल प्राण पर इकट्ठी धूल बन जाता है। सीखे हुए ज्ञान से हमारी आत्मा के कोई संबंध नहीं होते। ऊपर से उधार, लाई गई चीजें कभी हमारे प्राणों में सम्मिलित नहीं हो पाती हैं, प्राणों से एक नहीं हो पातीं। वे हमारे ऊपर इकट्ठी होती चली जाती हैं और वे जितनी ज्यादा इकट्ठी

हो जाती हैं, भीतर हमारे प्राण उतने ही जरा-जीर्ण में, पुराने में ग्रसित हो जाते हैं और बंध जाते हैं।
हम बहुत सा ज्ञान का कचरा इकट्ठा किये हुए हैं लेकिन यदि उसे हम ज्ञान समझते रहेंगे, तो फिर उससे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। लेकिन यदि वह हमें कचरा दिखाई पड़ने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगे कि वही हमारे मन को नये होने से रोकता है, तो शायद हमारा यह बोध ही उससे मुक्ति का मार्ग बन जाये। हमने क्या-क्या सीख रखा है? हमने जीवन के संबंध में जो भी सत्य, केवल जाने जा सकते हैं, कभी माने नहीं जा सकते हैं, उन सबको ही हमने मान रखा है। जीवन में जो भी बहुमूल्य है, सुंदर है, जो भी श्रेष्ठ है और सत्य है, वह सब हमारा बासा, जूठा और पुराना है। कृष्ण का है, महावीर का है, बुद्ध का है, क्राइस्ट का है। लेकिन हमारा! हमारा अपना उसमें कुछ भी नहीं है। गीता का है, कुरान का है, बाइबिल का है, लेकिन हमारा! हमारा उसमें कुछ भी नहीं है। एक बार अपने मन के सारे ज्ञान पर ठीक से दृष्टि डाल लेनी जरूरी है कि
यह कहीं पराया, उधार और बासा तो नहीं है! हम भोजन भी करते हैं, तो विचार कर लेते हैं, बासा तो नहीं है, पुराना तो नहीं है, जूठा तो नहीं है। लेकिन रोज जो हम भोजन करते हैं, उसमें इतना विचार कर लेते हैं, लेकिन ज्ञान का भोजन करते समय कोई विचार नहीं करता कि बासा और जूठा और पुराना तो नहीं है! बल्कि एक उल्टी बात चल पड़ी है: जितना पुराना ज्ञान हो, उतना ही हमें लगता है, ज्यादा बहुमूल्य है। जितना बासा हो, उतना ही हम सोचते हैं, कीमती है। हर धर्म का आदमी अपने ग्रंथ को प्राचीन से प्राचीन सिद्ध करने की इसीलिए कोशिश करता है।
हर धर्म अपने धर्म को पुराने से पुराना सिद्ध करने का प्रयाय करता है--अपने तीर्थंकर को, अपने अवतार को, अपने ईश्वरपुत्र को, सबसे प्राचीन सिद्ध करने की कोशिश में सिर तोड़े डालते हैं विद्वान। एक ही कारण से, क्योंकि जितना पुराना ज्ञान होता है, उतने ही ग्राहक मिल जाते हैं। होना उलटा ही चाहिए। जितना पुराना ज्ञान हो, उसके लिए तो ग्राहक मिलने ही नहीं चाहिए। किसी धर्म का बहुत पुराना सिद्ध हो जाना उसे दफनाने की तैयारी की शुरुआत होनी चाहिए। क्योंकि जितना पुराना हो जाता है, उतना ही झूठा हो जाता है।
पहली तो बात, जिस आदमी के चित्त में ज्ञान का जन्म होता है, तब तो वह फर्स्ट हैंड होता है, ताजा और नया। और जैसे ही वह बोलता है, वैस सेकेंड हैंड हो जाता है। क्योंकि बोलते में ही वह उतना नहीं बोल पाता, जितना जानता है। वह नहीं कह पाता, जो वह जानता है। सारी बात बदल जाती है। उसी वक्त ज्ञान झूठा होना शुरू हो जाता है। फिर वह एक-एक हाथ से हजारों हाथ में यात्रा करता है और तब इस यात्रा में, जितनी पुरानी लंबी यात्रा होती है, ज्ञान उतना ही विकृत, उतना ही असत्य, उतना ही झूठा होता चलता है।
एक वैज्ञानिक इस बात पर प्रयोग कर रहा था कि एक हाथ से बात दूसरे हाथ में जाती है, तो उसकी शक्ल क्या हो जाती है? इसने सौ युवकों के एक समूह को चुना और एक छोटे से कमरे में एक युवक को भीतर ले गया और वहां एक ज्यामेट्री की फिगर, ज्यामिति का एक रेखाचित्र बनाया। उस युवक को कहा कि "इसे पांच मिनट देख लो", फिर चित्र को उल्टा कर रख दिया और कहा, "अब अपनी स्मृति से चित्र बनाओ।" पांच मिनट उसने देखा था, फिर चित्र बंद करके रख दिया गया। फिर इस युवक ने, वे सभी विद्यार्थी गणित के विद्यार्थी थे, उस युवक ने उस ज्यामेट्री के फिगर को बनाया।
फिर दूसरे युवक को भीतर ले जाया गया और पहले युवक ने जो चित्र बनाया था, वह दूसरे युवक को पांच मिनट चित्र दिखाया, चित्र बंद कर दिया और कहा कि तुम अपनी स्मृति से यह चित्र बनाओ। फिर उसने जो चित्र बनाया था, वह तीसरे युवक को दिखाया। ऐसे सौ युवकों ने चित्र बनाये, और पहला चित्र जो उसने खुद बनाया था, लाकर उसने बाहर टांगा और सौवां चित्र। उन सौ में से एक भी चित्र पहचान नहीं सका कि इन दोनों में कोई संबंध है। वे दोनों ही अनूठी बातें थीं, उनमें कोई संबंध नहीं था। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि इसी चित्र के सौ हाथों से गुजर जाने पर, बीत जाने पर यह दशा हो जायेगी।

ज्ञान की दशा इससे भी ज्यादा विकृत होती है, क्योंकि चित्र तो देखा जा सकता है, ज्ञान तो देखा भी नहीं जा सकता। चित्र की रेखाएं तो याद भी रखी जा सकती हैं, लेकिन ज्ञान तो इतना सूक्ष्म है कि उसकी कोई रेखाएं नहीं, कोई रूप नहीं, एक हल्की प्रतिध्वनि मन में रह जाती है और फिर वह एक हाथ से दूसरे हाथ में यात्रा करने लगती है।
करोड़ों-करोड़ों हाथों में ज्ञान यात्रा करते-करते, ज्ञान से उसका कोई संबंध नहीं रह जाता। जितना पुराना ज्ञान, उतना बासा, उतना मृत, उतना झूठा। ज्ञान तो तभी अर्थ रखता है, जब वह पहली दफा पहले हाथ में उपलब्ध होता हैं। हम सब "सैकेंड हैंड" कहना भी गलत है, क्योंकि करोडों हाथों से गुजरे हुए हम सब आदमी हैं। हमारा सारा ज्ञान इतने हाथों में इतना झूठा हो चुका है, इतना बासा हो चुका है, उस ज्ञान को लिए बैठे हैं तो हमारा चित्त नया नहीं हो सकता है।
लेकिन हजारों साल से हमें सिखाया गया है, पुराने को पकड़ रखने को। हजारों साल के प्रोपेगेंडा और प्रचार का यह परिणाम हुआ है कि हम अपने प्राणों से भी ज्यादा बहुमूल्य जो ज्ञान हमें मिलता है, उसे सम्हाल कर रखते हैं। और उसी वजह से, जितना यह ज्ञान पुराना होता चला जाता है, उतना ही सत्य को उपलब्ध लोगों की संख्या कम होती चली जाती है। प्रती दिन ज्ञान पुराना होता चला जाता है और सत्य को पाने वाले लोंगो की संख्या क्षीण होती चली जाती है।
इस सारे पुराने ज्ञान को एक बार चित्त से हटा देना अत्यंत जरूरी है।
इस मंदिर को गिरा ही देना जरूरी है। अगर आपके जीवन में कोई क्रांति होनी है, तो इस साहसपूर्ण कदम के बिना वह नहीं हो सकती। कोई समझौता, कोई कंप्रोमाइज इसमें नहीं हो सकती। आप कहें कि इसी से नये मंदिर को बना लेंगे, इन्हीं पुरानी ईंटों से। पुरानी ईंटों का मोह, नये के जन्म में बाधा है।
कौन हटायेगा मन पर इस इकट्ठे बोझ को? गीता, कुरान, बाइबिल को कौन विदा देगा? अतीत के विचारकों को, उन्होंने जरूर जाना होगा। उनके जानने का कोई विरोध मैं नहीं करता हूं, लेकिन उनका जाना हुआ आपके लिये बोझ है। उनका जाना हुआ उनके लिये मुक्ति रही होगी। उनका जाना हुआ आपके लिए बंधन है। मैं जो जानता हूं, वह मुझे मुक्त करेगा, लेकिन आपको बांध लेगा। आप जो जानेंगे, वही आपको मुक्त कर सकता है। खुद के ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति न संभव है, न संभव हो सकती है।
तो इस पहली सुबह, मैं आपको इस सुबह जैसा ही ताजा हो जाने के लिये निवेदन करना चाहता हूं। और आप पूछेंगे कि क्यों हम बंधें हैं इस पुराने से? पुराने से बंधने के पीछे कुछ कारण हैं। एक तो, आलस्य बहुत बड़ा कारण है। हम सब आलसी हैं, जो हमें मुफ्त में मिल जाये, उसे हम तत्क्षण स्वीकार कर लेते हैं। उधार ज्ञान मुफ्त में उपलब्ध होता है। उसके लिये कुछ भी हमें करना नहीं पड़ता। तो कौन इस मुफ्त ज्ञान को छोड़ने को राजी होगा? सभी आलसी चित्त लोग, सभी श्रम न करने के लिये उत्सुक लोग इसे तत्काल स्वीकार कर लेंगे।
हम सब भिक्षु हैं। श्रम कोई भी नहीं करना चाहता है, भीख मांग लेना चाहते हैं। और एक आदमी सड़क पर दो पैसे की भीख मांगता है और हम उसे अपमान की दृष्टि से देखते हैं कि भिखारी है, भिखमंगा है, पैसे मांगता है! हम उससे यह भी कहते हुए सुने जाते हैं कि खुद नहीं कमा सकते हो? लेकिन हम कभी ख्याल नहीं करते कि ज्ञान के जगत में हम सब भिक्षापात्र लिए भीख मांग रहे हैं! और कोई भी यह नहीं सोचता कि क्या खुद हम नहीं कमा सकते हैं।
और फिर मैं कहता हूं कि धन तो मांग कर भी पाया जा सकता है, क्योंकि धन बाहर है। धन तो मांग कर भी पाया जा सकता है, लेकिन ज्ञान तो कभी मांग कर नहीं पाया जा सकता है। क्योंकि जो भीतर है, उसकी भिक्षा संभव नहीं हो सकती।
ज्ञान भीख नहीं है। धन तो कोई भीख में मांग भी ले, क्योंकि धन बाहर है। लेकिन ज्ञान? ज्ञान स्थूल नहीं है, बाहर नहीं है, उसके कोई सिक्के नहीं हैं। उसे किसी से मांगा नहीं जा सकता है। उसे तो जानना ही होता है।

लेकिन आलस्य हमारा, प्रमाद हमारा, श्रम न करने की हमारी इच्छा, हमें
इस बासे, उधार ज्ञान को-जो कि ज्ञान नहीं है-इकट्ठा कर लेने के लिए तैयार कर देती है। इससे बड़ा मनुष्य का और कोई अपमान नहीं है कि वह ज्ञान मांगने किसी के द्वार पर जाये। इससे बड़ा कोई अपमान नहीं है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है।
लेकिन इस बात को तो धर्म समझा जाता रहा है, जिसे मैं पाप कहता हूं। जो आदमी जितना शास्त्रों से, शास्ताओं से ज्ञान इकट्ठा कर लेता है, उतना धार्मिक समझा जाता है। उससे ज्यादा पापी मनुष्य दूसरा नहीं है। क्योंकि जीवन में सबसे बड़ा पाप वह कर रहा है, वह यह कि वह ज्ञान उधार मांग रहा है, भीख मांग रहा है, जो कि कभी मिल ही नहीं सकता।
जैसे ही कोई देता है ज्ञान, देते ही झूठा हो जाता है। एक युवक समुद्र
के किनारे घूमने गया था। बहुत सुंदर, बहुत शीतल, बहुत ताजगी देने वाली हवाएं उसे वहां मिलीं। वह एक युवती को प्रेम करता था, जो दूर किसी अस्पताल में बीमार थी। उसने सोचा, "इतनी सुंदर हवाएं, क्यों न मैं अपनी प्रेयसी को भेज दूं!" उसने एक बहुमूल्य पेटी में उन हवाओं को बंद किया और पार्सल से अपनी प्रेयसी के लिये भिजवा दिया। साथ में एक प्यारा पत्र लिखा कि बहुत शीतल, बहुत सुंगधित, बहुत ताजी हवाएं तुम्हें भेज रहा हूं, तुम बहुत आनंदित होओगी।
पत्र तो मिल गया, लेकिन हवाएं न मिलीं। पेटी खोली तो वहां कुछ भी न था।
वह युवती बहुत हैरान हुई। इतनी बहुमूल्य पेटी में भेजा था उसने उन हवाओं को, इतने प्रेम से। पत्र तो मिल गया, पेटी भी मिल गयी, लेकिन हवाएं? हवाएं वहां नहीं थीं।
समुद्र की हवाओं को पेटियों में भर कर नहीं भेजा जा सकता। चांद की चांदनी को भी पेटियों में भर कर नहीं भेजा जा सकता। प्रेम को भी पेटियों में भर कर नहीं भेजा जा सकता है। लेकिन परमात्मा को हम पेटियों में भर कर हजारों साल से एक दूसरे को भेजते रहे हैं। पेटियां मिल जाती हैं, बड़ी खूबसूरत पेटियां हैं, साथ में लिखे पत्र भी मिल जाते हैं, गीता के, कुरान के, बाइबिल के। लेकिन पेटी खोलने पर कुछ नहीं मिलता। जो ताजी हवाएं उन लोगों ने जानी होंगी जिन्होंने प्रेम में ये पत्र भेजे, वे हम तक नहीं पहुंच पाती हैं।
समुद्र की ताजी हवाओं को जानना हो, तो समुद्र के किनारे ही जाना पड़ेगा। और कोई रास्ता नहीं है। कोई दूसरा उन हवाओं को आपके पास नहीं पहुंचा सकता है। आपको खुद ही समुद्र तक ही यात्रा करनी होगी।
सत्य की ताजी हवाएं भी कोई नहीं पहुंचा सकता है। हमें स्वयं ही यात्रा करनी होती है। इस पहली बात को बहुत स्मरणपूर्वक ध्यान में ले लेनी जरूरी है। इस बात को ध्यान में लेते ही शास्त्र व्यर्थ हो जायेंगे, परंपराओं से भेजी गयी खबरें हंसने की बातें हो जायेंगी और आपका चित्त नये होने के लिये तैयार हो सकेगा। आलस्य है, जो इस सत्य को नहीं देखने देता। दूसरी बातः परंपरागत ज्ञान के साथ जीने में एक तरह की सुरक्षा, एक तरह
की सिक्योरिटी है। सभी लोग जिस बात को मानते हैं, उसे मान लेने में एक तरह की सुरक्षा है; राजपथ पर चलने जैसी सुरक्षा है। एक बड़ा राजपथ है, हाईवे है, उस पर हम सब चलते हैं सुरक्षित। कोई भय नहीं, बहुत लोग चल रहे हैं। लेकिन पगडंडियां हैं, अकेले रास्ते हैं, जिन पर यात्री मिले या न मिले, कोई साथी सहयोगी हो या न हो, अकेले जंगलों में भटक जाने का डर है। अंधेरे रास्ते हो सकते हैं-अनजान, अपरिचित, अननोन, उन पर जाने में भय लगता है। इसलिये हम सब सुरक्षित, बंधे हुए रास्तों पर चलते हैं, क्योंकि वहां सभी लोग चलते हैं। वहां कोई भय नहीं है। रास्ते पर और भी यात्री हैं-आगे भी यात्री हैं, पीछे भी। इससे यह विश्वास प्रबल होता है कि जब आगे लोग जा रहे हैं, तो ठीक ही जा रहे होंगे। पीछे लोग जा रहे हैं, तो ठीक ही लोग जा रहे होंगे। मैं ठीक ही जा रहा हूं, क्योंकि बहुत लोग जा रहे हैं। और हर आदमी को यही ख्याल है कि बहुत लोग जा रहे हैं। यह एक म्युचुअल फैलेसि है, यह एक पारस्परिक भ्रांति है। बहुत लोग एक तरफ जा रहे हैं, तो प्रत्येक यह सोचता है कि इतने लोग जा रहे हैं, तो जरूर ठीक जा रहे होंगे और हर एक यही सोचता है! भीड़ एक भ्रम पैदा कर

देती है। तो हजारों वर्षों की एक भीड़ चलती है, एक रास्ते पर। एक नया बच्चा पैदा होता है, इस भीड़ से अलग हट कर कैसे जाये। उसे विश्वास नहीं आता कि मैं ठीक हो सकता हूं। उसे विश्वास आता है, इतने लोग ठीक होंगे।

ज्ञान की दिशा में यह डेमोक्रेटिक ख्याल सबसे बड़ी भूल साबित हुई है। ज्ञान कोई लोकतंत्र नहीं है। यहां कोई हाथ उठाने और भीड़ के साथ होने का सवाल नहीं है। अक्सर तो उल्टा हुआ है, भीड़ गलत साबित हुई है। इकहरे, इक्के- दक्के व्यक्ति सही साबित हुए हैं। अगर भीड़ ही सही होती, तो दुनिया बहुत दूसरी होनी चाहिए। दुनिया एकदम गलत है। भीड़ गलत है। भीड़ गलत होगी।
कभी इक्का-दुक्का आदमी तो सही हुआ है, लेकिन भीड़ सही नहीं हुई है। लेकिन भीड़ को एक सुविधा है यह भ्रम पाल लेने की, पोस लेने की कि जहां सभी लोग साथ हैं, जहां बहुत लोग साथ हैं, वहां सत्य होगा ही। सत्य के लिये ऐसी कोई गारंटी और कसौटी नहीं है। बल्कि, सचाई तो यह है कि सत्य की शुरुआत ही नहीं हो पाती इस विश्वास के कारण कि लोग बहुत होने की वजह से सही होंगे और अकेले होने की वजह से गलत होंगे।
मैं कहीं गलत न हो जाऊं! ज्ञान मुझे खोजना है, सत्य मुझे पाना है, जीवन मुझे जीना है, और मुझे स्वय को कोई विश्वास नहीं है। भीड़ को अन्यों पर विश्वास है। तो फिर यह यात्रा कभी नहीं हो सकती। मुझे होना चाहिए स्वयं पर विश्वास और मुझे होता है भीड़ पर विश्वास। भीड़ जो भी कह देती है, उसे मान लेता हूं। भीड़ अगर हिंदू होती है, तो एक बात मान लेता हूं। भीड़ जैनी होती है, तो दूसरी बात मान लेता हूं। भीड़ कम्युनिस्टों की होती है, तो तीसरी बात मान लेता हूं। भीड़ आस्तिकों की है चौथी, नास्तिकों की है पांचवीं! भीड़ जो कहती है, वह मैं मान लेता हूं। भीड़ मेरे प्राणों को जुटाये हुए है।
यह जो कलेक्टिव माइंड है, यह जो समूह का मन है, यह व्यक्ति के मन को सत्य तक नहीं पहुंचने देता है। कलेक्टिव माइंड, समूह का जो मन है, हजारों- हजारों साल में निर्मित होता है।...
मैंने सुना है, एक सुबह एक पति अपना अखबार पढ़ रहा था। उसकी पत्नी ने उसे अखबार पढ़ते देख कर चिंता अनुभव की होगी, क्योंकि पत्नियां यह कभी पसंद नहीं करतीं कि उनका पति उनके अतिरिक्त और किसी चीज में उत्सुक हो। अखबार में भी उत्सुक हो, तो ईर्ष्या पैदा होती है। तो उस पत्नी ने कहा कि "ऐसा मालूम होता है कि अब तुम मुझे प्रेम नहीं करते। मैं आधे घंटे से बैठी हूं, लेकिन तुमने मेरी तरफ देखा नहीं। तुम अपना अखबार ही पढ़े जाते हो?" उसके पति ने कहा, "गलती में हो तुम। अब तो मैं तुम्हें और भी ज्यादा प्रेम करता हूं। अब तो तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता। तुम्हीं मेरी श्वास, तुम्हीं मेरे प्राण हो।" और आखिर में कहा, "अब बकवास बंद करो, अब मुझे अखबार पढ़ने दो। अब बहुत हो गया, अब बकवास बंद करो, मुझे अखबार पढ़ने दो।"
ऊपर, एक आवरण जीवन में हम प्रेम का ओढ़े बैठे रहते हैं और पीछे? पीछे वह हमारी सारी क्रूरता, सारी हिंसा मौजूद होती है। अगर आदमी को जरा खरोंच दो, उसका सारा झूठा व्यक्तित्व खत्म और उसके भीतर से असली आदमी बाहर। जरा किसी के पैर पर चोट लगा दो, जरा किसी को धक्का दे दो, वह गयी बात। वह जो ऊपर से आदमी था विलीन हो गया, दूसरा आदमी मौजूद हो गया। इस आदमी का पता नहीं था कि यह इतनी दूरी पर पास ही मौजूद है। हम सबके भीतर वह आदमी मौजूद है। और उस आदमी की वह मौजूदगी और ऊपर से यह आवरण झूठा, विरोधी है। और हमें इस विरोध के भीतर हिंसा मालूम पड़ती है, तो जो अपोजिट है, जो विरोध है-अहिंसा-उसका वस्त्र ओढ़ लिया है। भीतर क्रोध है, तो हमने ऊपर क्षमा का वस्त्र ओढ़ लिया। भीतर घृणा है, तो हमने ऊपर प्रेम का वस्त्र ओढ़ लिया। आदमी का चित्त विकृत है, इस अपोजिट के कारण।
यह जो विरोध ओढ़े हुए है इसके कारण मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। क्योंकि इस विरोधी के ओढ़ने से वह जो भीतर है, वह नष्ट नहीं होगा, बल्कि वह नष्ट हो सकता था, अगर यह विरोधी न ओढ़ा जाता। क्योंकि उसके साथ जीना बहुत कठिन था, उसके साथ एक क्षण जीना कठिन था। इस विरोधी के ओढ़ लेने के कारण उसके साथ जीना आसान हो गया। अगर किसी भिखमंगे को यह ख्याल हो जाये कि मैं

सम्राट हूं-और ऐसा अक्सर भिखमंगों का ख्याल हो जाता हैत्तो फिर भिखमंगेपन के मिटने की कोई संभावना नहीं रही, क्योंकि ख्याल है कि मैं सम्राट हूं। और आदमी भिखमंगा है, भिखारी है, लेकिन ख्याल है कि मैं सम्राट हूं, तो अब उसके भिखमंगेपन के मिटने का क्या मार्ग रहा? लेकिन इस ख्याल से वह सम्राट हो नहीं जाता है, रहता तो भिखमंगा ही है। एक सपना ओढ़ लेता है सम्राट के होने का, और इस सपने ओढ़ लेने के कारण भिखमंगी में रहने की सुविधा मिल जाती है। अगर यह ख्याल न हो कि मैं सम्राट हूं और जाने कि मैं भिखारी हूं तो भिखारी होने के साथ जीना कठिन है। उसे बदलना होगा, उसे भिखारीपन से मुक्ति और छुटकारा पाना होगा।
अगर एक बीमार आदमी को ख्याल हो जाये कि मै स्वस्थ हूं, तो फिर, उसकी बीमारी के उपचार की क्या संभावना रही? वह अपनी बीमारी को मिटाने के लिये क्या करेगा? वह कुछ भी नहीं करेगा। लेकिन इस ख्याल से कि मैं स्वस्थ हूं, वह स्वस्थ हो नहीं जाता। रहता तो बीमार है, लेकिन इस ख्याल के कारण बीमारी को भीतर सरकने का, जीने का मौका मिल जाता है। बीमारी के मिटने की सारी संभावना समाप्त हो जाती है।
बीमारी को मिटाने के लिये बीमारी को पूरी तरह जानना जरूरी है। बीमारी
से मुक्त होने के लिए बीमारी को भूलना सबसे घातक बात है, और हम सब अपनी बीमारियों को भूल कर बैठ जाते हैं। हम सब तरकीबें निकाल लेते हैं कि बीमारी भूल जाये और फिर बीमारी जीती है, भीतर सरकती है, अपरिचित और अनजान हो जाने के कारण, अनकांशस हो जाने के कारण, अचेतन हो जाने के कारण हमारा उससे ऊपर से कोई संबंध नहीं रह जाता, लेकिन प्राणों को भीतर-भीतर वह रौंद डालती है। मनुष्य इसलिये अस्वस्थ है, मनुष्य का चित्त इसलिये अस्वस्थ है। इस पूरी बात को अगर हम संक्षिप्त में समझें, तो इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य तथ्यों को छिपाने के लिए आदर्शों का उपयोग करता है। वे जो फैक्ट्स हैं, उनको छिपाने के लिए फिक्शन खड़े करता है। जो तथ्य हैं, जो सचाइयां हैं, उन्हें छिपाने के लिए झूठी कल्पनाएं और आदर्श और आइडियल्स खड़े करता है। और फिर, इन आदर्शों के कारण तथ्यों को भूल जाता है। लेकिन तथ्य, तथ्य भूलने से मिटते नहीं हैं। अगर चीजें भूलने से मिटती होतीं, तो बहुत आसान बात थी। तब तो एक आदमी शराब पी लेता और दुख मिट जाता। लेकिन शराब पीने से दुख मिटता नहीं, केवल भूलता है।
आदर्शों की शराब पी लेने से भी जीवन के तथ्य बदलते नहीं, मौजूद रहते हैं। यह हमारा ही देश है। यह अहिंसा की शराब हजारों साल से पी रहा है, लेकिन एक भी आदमी अहिंसक नहीं हो पाया! हिंसा मौजूद है। हमारे चित्त में सब तरफ हिंसा मौजूद है, लेकिन हम अहिंसा की बातें करके अपनी हिंसा को छिपाए रखते हैं। जरा सी चोट और हमारी हिंसा के फव्वारे निकलने शुरू हो जाते हैं। हमारे कवि हिंसा के गीत गाने लगते हैं, हमारे नेता हिंसा की बात करने लगते हैं। हमारे साधु-संन्यासी भी कहने लगते हैं, अहिंसा की रक्षा के लिए अब हिंसा की जरूरत है। और सारी अहिंसा एक क्षण में विलीन हो जाती है! हम हजारों साल से प्रेम की बातें करते रहे हैं, लेकिन हमारे जीवन में कहां है प्रेम? हम दया की, सेवा की बातें करते रहे हैं, कहां है दया और कहां है सेवा? और हमारी सारी सेवा और हमारी दया भी हमारे गहरे से गहरे स्वार्थों की अनुचर हो गयी है। एक को मोक्ष जाना है, इसलिए वह दया करता है, दान करता है। यह दया और दान है? या कि सौदा है! एक आदमी को आत्मा को पाना है, इसलिए वह सेवा करता है गरीबी की। यह सेवा है? या अपने स्वार्थ के लिए गरीब को भी उपकरण बनाना है!
एक चर्च में एक पादरी ने रविवार के दिन आने वाले बच्चों को समझाया कि जिन्हें भी स्वर्ग जाना है, उन्हें सेवा जरूर करनी चाहिए। उन बच्चों ने पूछा, "हम कैसे सेवा करें, क्योंकि स्वर्ग तो हम सब जाना चाहते हैं।" पादरी ने कहा, "कई प्रकार हैं सेवा के। डूबता हुआ कोई हो, तो उसे बचाना चाहिए। किसी घर में आग लग गयी हो, तो जाकर घर का सामान या व्यक्तियों को बाहर निकालना चाहिए। यह बहुत सरल सी बात, कोई भी किसी तरह की किसी को कोई सहायता पहुंचानी हो, तो पहुंचानी चाहिए।"

अगले रविवार को जब ये बच्चे फिर आए, उस पादरी ने पूछाः तुमने कोई सेवा
का कार्य किया? तीन बच्चों ने हाथ उठाए। एक बच्चे से पूछा कि उसने क्या किया। उसने कहा, "मैंने एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई। उसने धन्यवाद दिया कि खुश हूं मैं, तुमने बहुत अच्छा काम किया। दूसरे बच्चे से पूछाः तुमने क्या किया? उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई! वह थोड़ा हैरान हुआ। लेकिन उसको भी धन्यवाद दिया और तीसरे से पूछाः तुमने क्या किया? उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई! वह बहुत हैरान हुआ। उसने पूछाः क्या तीन बूढ़ी औरतें तुम्हें पार करवाने को मिल गईं?" उन तीनों ने कहाः तीन कहां, एक ही बूढ़ी औरत। तो वह बहुत हैरान हुआ, पूछा कि तुमको, तीन को उसे पार करवाना पड़ा? उन तीनों ने कहाः वह पार होना नहीं चाहती थी, बडी मुश्किल से पार कर देना पड़ा। वह तो बिल्कुल भागती थी, पकड़ कर जबर्दस्ती हमने सड़क पार करवाई, क्योंकि स्वर्ग जाना तो जरूरी है और सेवा करनी ही पड.ेगी!" उस पादरी ने कहा, "अब कृपा करके ऐसी सेवा मत करना। अच्छा किया तुमने कि औरत को ही पार करवाया, कहीं मकान में आग लगा कर लोंगो को नहीं बचवाया, या किसी को नदी में डुबा कर प्राण नहीं बचाए। यही बहुत है, अब तुम और सेवा मत करना!"
सेवकों ने दुनिया में ऐसे बहुत से काम किये हैं। लेकिन उन्हें सेवा करनी जरूरी है, क्योंकि स्वर्ग जाना जरूरी है। ये सारी सेवा, ये सारे दान, ये सारी दया, ये सारी अहिंसा की बकवास हमारे भीतर जो असली आदमी है, उसको छिपा लेती है। और वह जो असली आदमी है, वही है। जो कुछ भी होना है, उसके द्वारा होना है। जो भी जीवन में क्रांति, या न क्रांति, जीवन में कोई परिवर्तन या न परिवर्तन-जो कुछ भी होना है- उस असली आदमी से होना है। उस फेक्चुअल आदमी से, जो मैं हूं, जो आप हैं। यह आदर्शों से कुछ भी होना नहीं है। लेकिन आदर्शों में हम अपने को छिपा लेते हैं।
एक बुरा आदमी अच्छे बनने की कोशिश में यह भूल जाता है कि मैं बुरा आदमी हूं। यही वह भूलना चाहता है। यही वह भूलना चाहता है कि मैं बुरा आदमी हूं। इसलिये सब बुरे आदमी अच्छे आदर्शों को पकड़ लेते हैं। अच्छे आदर्शों की जो बात करता हो, पहचान लेना, उसके भीतर बुरा आदमी मौजूद है। बुरा आदमी मौजूद न हो तो अच्छे आदर्श की बात हो ही नहीं सकती। क्योंकि तब आदमी अच्छा होगा। अच्छे आदर्श का सवाल कहां है? अच्छा आदर्श, भीतर छिपे हुए बुरे आदमी की तरकीब है। और बहुत गहरी तरकीब है, जिससे वह अपने को बचा लेता है। अच्छे बनने की कोशिश में बुरा आदमी भूल जाता है। और बुरा आदमी जब तक मौजूद है भीतर, तब तक कोई अच्छा आदमी बन कैसे सकता है। वह लाख उपाय करे, वह जो भी करेगा, उसमें बुरा आदमी भीतर से लौट कर फिर खड़ा हो जायेगा।
रोज हम देखते हैं, लेकिन देखने की क्षमता शायद हमने खो दी। बुरा आदमी भीतर मौजूद है। वह हिंसा और घृणा से भरा हुआ चित्त, तो फिर आप कुछ भी करें- आप जो भी करेंगे, चाहे कितना भी पवित्र काम करेंगे, आपके पवित्रतम काम के पीछे चूंकि बुरा आदमी मौजूद है, आपका पवित्रतम काम भी धोखा होगा; उसके पीछे भी असलियत कुछ और ही होती है। लेकिन हो सकता है, ऊपर से वह दिखाई पड़नी बंद हो जाये। शायद लोगों को दिखाई न पड़े, लेकिन आपको भलीभांति दिखाई पड़ सकती है। और आपको दिखाई पड़ जाये, तो आप स्वस्थ चित्त की दशा में, स्वस्थ चित्त के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं।
पहली बात है: स्वस्थ चित्त की दिशा में पहला कदम। पहला सूत्र इस सत्य
को देखना कि तथ्य में मैं क्या हूं, आदर्शों में नहीं। फेक्चुअलिटी क्या है? मेरी आइडियोलाजी क्या है यह नहीं, आप क्या मानते हैं यह नहीं, आप क्या हैं? सचाई क्या है आपकी? अगर हम उसको जानने के लिये राजी हो जायें, और इसको हम जानने को तभी राजी हो सकते हैं, जब यह व्यर्थ ख्याल हमारा छूट जाये कि आदर्शों की कल्पना और आदर्शों की दौड़ में हम बदल सकते हैं, परिवर्तित हो सकते हैं। कभी कोई आदर्शों के द्वारा परिवर्तित नहीं हुआ है। ऊपर से दिखाई भी पड़े कि यह आदमी बदल गया है, भीतर वही आदमी मौजूद रहेगा।
एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी था। इतना क्रोधी था कि उसने अपनी पत्नी को कुएं में फेंक दिया। उसकी पत्नी कर गई। पीछे उसे पश्चात्ताप हुआ होगा। सभी क्रोधी लोग पीछे पश्चात्ताप जरूर कर लेते हैं। उस भ्रांति उनका

जो अपराधभाव है, समाप्त हो जाता है। वे फिर से का्रेध करने के लिए तत्पर और तैयार हो जाते हैं। पश्चात्ताप तरकीब है, किये गये बुरे से साफ कर लेने की स्वयं को।
उसने पश्चात्ताप किया, उसने मित्रों से कहा, "मैं बहुत दुखी हुआ हूं।
अब इस क्रोध से मुझे किसी न किसी रूप से छुटकारा पाना है। हद्द हो गई, यह तो सीमा के बाहर चला गया। जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उसी की मैंने हत्या कर दी!"
यह वाक्य कितना ठीक लगता है कि जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उसी की मैंने हत्या कर दी! लेकिन यह वाक्य क्या ठीक हो सकता है? क्योंकि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसकी हत्या कर सकते हैं? लेकिन हम रोज यह कहते हैं कि जिस बच्चे को मैं प्रेम करता था, उसको मैंने चांटा मार दिया। जिस मित्र को मैं प्रेम करता था, उससे मैंने बुरे शब्द बोल दिये। जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उससे मेरा झगड़ा हो गया। झगड़ा सच है, चांटा मारना सच है, हत्या करना सच है, प्रेम का ख्याल झूठा है। लेकिन उसके मित्रों ने कहा, "तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा है, यह बड़ी अच्छी बात है। गांव में एक मुनि आये हुए हैं, तुम वहां चलो। शायद उनसे तुम्हें कोई रास्ता मिल जाये।"
मुनि के पास उस क्रोधी व्यक्ति को ले गये, और मुनि जो हमेशा से रास्ता बताते रह पेटेंट, वह उन्होंने उसे बता दिया कि "तुम संन्यासी हो जाओ। बिना संन्यासी हुए क्रोध इत्यादि से छुटकारा नहीं हो सकता। संसार में रहोगे, तो क्रोध और लोभ और मोह में बंद फंसे ही रहोगे। यह तो संसार में स्वाभाविक है। संन्यासी हुए बिना क्रोध के बाहर तुम नहीं हो सकते हो।" वह आदमी तो दुख में था ही। उसने अपने वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न खड़ा हो गया। उसने कहा कि "मैं संन्यासी हो गया।"
वे मुनि भी नग्न थे। मुनि बड़े हैरान हुए और बहुत उन्होंने धन्यवाद किया उस व्यक्ति का कि "ऐसा मैंने व्यक्ति नहीं देखा, इतना संकल्पवान! तत्क्षण इतनी शीघ्रता से परिवर्तित हो जाने वाला! एक तो वह बाल्या भील की कथा थी, कि दूसरी तुम्हारी है," उन्होंने कहा। लेकिन मुनि धोखे में आ गये। पूरे गांव ने प्रशंसा की, लेकिन उनको पता नहीं था कि यह क्रोधी आदमी का सहज लक्षण था।
क्रोधी आदमी शीघ्रता से कुछ भी कर सकता है। यह उसके एंगर का ही, यह उसके क्रोधी होने का ही सबूत था; संकल्प वगैरह का सबूत नहीं था। और न ही उसके दृढ़शक्ति वाले और विल पावर होने का सबूत था। वह सिर्फ उसके क्रोधी होने का सबूत था। जिस शीघ्रता से उसने अपनी पत्नी को कुएं में धक्का दिया था, उतनी ही शीघ्रता से खुद को संन्यास में धक्का दे दिया। ये दोनों एक ही चित्त के लक्षण थे। लेकिन गांव धोखे में आ गया। वह मुनि भी धोखे में आ गये। उन्होंने कई लोगों को संन्यास की दीक्षा दी थी, लेकिन जब तक वे लोग शुरू में कहते थे कि हां, कभी संन्यास लेंगे जरूर। लेकिन इस आदमी ने तत्क्षण कपड़े फेंक दिये। गुरु के मन में भी इस शिष्य का बड़ा आदर हो गया।
और फिर उस शिष्य ने जो तपश्चर्या की, उसका तो पूरे देश में कोई मुकाबला न रहा। उसने जैसे कष्टपूर्ण उपवास किये, वह एक पैर पर घंटों खड़ा रहा! ऐसे कठिन उसने शीर्षासन किये! जितने उपद्रव हो सकते थे, उसने सब अपने साथ किये। उसके तप की सब जगह प्रशंसा और हवा फैल गई। दूर-दूर से लोग उसके दर्शन को आने लगे। वह महातपस्वी उसके तप का कोई प्रतियोगी न रहा। लोग फिर भी भूल में पड़ गये। उन्हें पता नहीं कि वही क्रोधी आदमी है। और यह क्रोध का ही रूपांतरण है, यह क्रोध का ही रूप है कि वह आदमी आज धूप में खड़ा हुआ है, आज रेत में लेटा हुआ है, कल कांटों पर सोया हुआ है। महीनों भूखा है, सूख कर हड्डी हो गया है। यह क्रोध का ही रूप है, किसी को ख्याल न आया। लोग कहने लगे, महातपस्वी है। ऐसा तपस्वी नहीं देखा गया।
और जितनी उसको प्रशंसा मिलने लगी, उतना अहंकार उसका मजबूत होने लगा। उतना ही वह और तपस्या करने लगा। फिर तो उसकी ख्याति बहुत फैली। और जब किसी तपस्वी की ख्याति बहुत फैल जाये, तो वह राजधानी की तरफ यात्रा करता है। उसने भी यात्रा की। वह तपस्वी राजधानी की तरफ चला। सभी तपस्वी अंततः राजधानी पहुंच जाते हैं। चाहे तप का कोई रूप हो, कि धार्मिक, कि राजनीतिक,

कि समाज सेवा का, लेकिन तपस्वी अंत में राजधानी जरूर पहुंचता है। वह राजधानी की तरफ चला। क्योंकि अब छोटे-मोटे गांव काम नहीं कर सकते थे। अब इस तपस्वी के लिये, महातपस्वी के लिये राजधानी चाहिये।
वहां राजधानी में उसके बचपन का एक मित्र, उसके साथ पढ़ा हुआ एक मित्र था। उसने सुनी प्रशंसा इस मित्र की, वह उसके दर्शन को गया। मन में उसके संदेह जरूर था कि वैसा क्रोधी व्यक्ति! कहीं सब क्रोध का रूपांतरण न हो! यह जो इतनी तीव्र तपस्या चल रही है, यह कहीं क्रोध का ही रूप न हो! यह कहीं क्रोध खुद पर ही न लौट आया हो, यह कहीं क्रोध धार्मिक न बन गया हो! क्रोध धार्मिक बन गया था। उसके मन में शक तो था। वह पहुंचा, सोचा था कि शायद अगर मित्र सचमुच में ही साधु हो गया होगा, तो कम से कम मुझे पहचान तो लेगा। बचपन में वर्षों वे साथ रहे थे।
लेकिन जो लोग भी अहंकार की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं, वे फिर किसी को भी पहचानते नहीं हैं। सभी उनको पहचानें यह तो वे चाहते हैं, लेकिन किसी को उन्हें पहचानना पड़े, ऐसा वे कभी नहीं चाहते। क्योंकि जो किसी को पहचानता है, वह छोटा हो जाता है। और जो सबसे पहचाना जाता है, सब जिसे रिकग्नाइज करते हे, वह बड़ा हो जाता है। देख तो लिया उसने मित्र को, लेकिन पहचाना नहीं। कौन पद पर पहुंचे लोग मित्रों को कब पहचानते हैं!
मित्र पास जाकर बैठ गया है चरणों में। शक तो मित्र को हुआ कि मुझे पहचान तो उन्होंने लिया है, क्योंकि वे इरछी-तिरछी आंख से देख कर इधर-उधर देखने लगते थे। क्योंकि न पहचाना होता, तो बार-बार देखने की उस तरफ जरूरत ही न थी। और देखने से बच भी रहे थे, उसकी भी कोई जरूरत न थी। उस मित्र ने पूछा कि "क्या महाराज, मैं पूछ सकता हूं, आपका नाम?" महाराज ने कहा, "मेरा नाम! अखबार नहीं पढ़ते हो? रेडियो नहीं सुनते हो? मेरा नाम कौन है जो नहीं जानता? लेकिन फिर भी तुम पूछते हो। मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ।" कहने से ही मित्र को ख्याल आ गया कि शांति कितनी उपलब्ध हुई होगी। दो-चार मिनट शांतिनाथ आत्मा-परमात्मा की बातें करते रहे। फिर दो-चार मिनट के बाद उस मित्र ने पूछा कि "मुनि जी, क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपका नाम क्या है?" मुनि जी तो हैरान हो गये। हद्द हो गयी। अभी इसने पूछा, और मैंने बताया। कहा कि "सुनते हो या कि बहरे हो! कहा मैंने मुनि शांतिनाथ।"
मित्र का संदेह मजबूत होने लगा। शांति खो गयी थी। दो-चार मिनट आत्मा- परमात्मा की फिर बात चलती रही। मित्र ने फिर पूछाः "क्या मैं पूछ सकता हूं, आपका नाम?" उन्होंने डंडा उठा लिया। उन्होंने कहाः "अब मैं तुम्हें बताता हूं मेरा नाम!" उसके मित्र ने कहाः "मैं पहचान गया, शांतिनाथ जी। आप मेरे पुराने ही मित्र हैं। कोई फर्क कहीं भी नहीं हुआ है!"
चित्त स्वयं को, सबको धोखा देने में समर्थ है। लेकिन धोखे से चित्त रुग्ण होता चला जाता है, अस्वस्थ होता चला जाता है। हम सब भी ऐसे धोखे रोज दे रहे हैं। हमारी मुस्कुराहटें झूठी, हमारा प्रेम झूठा, हमारी दया झूठी, हमारी अहिंसा झूठी, और भीतर जो हमारी सचाई है, वह बिल्कुल और है। बाहर से हम मुनि शांतिनाथ हैं, भीतर हम कौन हैं, वह हमें खोजना है और जानना है। वह हमें पहचानना है कि भीतर हम कौन हैं।
यह जो बाहर का सारा का सारा हमने एक फिक्शन, एक कल्पना, एक सपना खड़ा कर रखा है, एक आदर्श अपने ऊपर ओढ़ रखा है, यही है जो हमारे जीवन में क्रांति को, ट्रांसफार्मेशन को नहीं आने देता है। इसके कारण हम तथ्यों को देख ही नहीं पाते। और एक और बहुत मजे की बात है कि तथ्यों को देखना ही उनकी बदलाहट हो जाती है। किसी तथ्य को पूरी तरह देख लेना ही उसकी बदलाहट हो जाती है। लेकिन तथ्यों का तीव्रता से हम दर्शन नहीं कर पाते, तो बदलाहट नहीं हो पाती।
एक वैज्ञानिक एक प्रयोग कर रहा था। उसने दो बाल्टियों में पानी भरा
और दो मेंढक पकड़ कर लाया। एक बाल्टी में उसने उबलता हुआ पानी भरा और मेढक को उसमें छोड़ा। जानते हैं आप, क्या हुआ? मेढक छलांग लगा कर बाहर निकल गया। उबलता हुआ पानी था। क्या होता? और होना क्या था? इतना तीव्र था उत्ताप जल का, मेंढक छोड़ा और वह छलांग लगा कर बाहर निकल गया। इस बात का दिखाई पड़ जाना

मेढक को कि आग सा पानी है, फिर कुछ करना थोड़े ही पड़ा। हो गई बात। निकल गया बाहर।
दूसरी बाल्टी में उसने मेढक को डाला। उसमें कुनकुना पानी, ल्यूकवार्म, और धीरे-धीरे बाल्टी को वह नीचे से गरम करता गया। मेढक मर गया। धीरे-धीरे पानी गर्म होता गया, धीरे-धीरे पानी गर्म होता गया, मेढक को किसी तल पर यह पता नहीं चला कि पानी इतना गर्म हो गया है कि मैं निकल जाऊं। धीरे-धीरे पानी गर्म हुआ, मेढक एडजेस्ट होता गया। मेंढक जो था, वह धीरे- धीरे उस पानी से राजी होता गया, वह धीरे-धीरे गर्म होता गया, एक-एक डिग्री गर्म होता रहा। मेढक भी उसके साथ तैयारी करता रहा और खत्म होता गया। थोड़ी देर में जब पानी उबला, तो मेंढक उसी में उबल गया और मर गया।
पहला मेंढक छलांग लगा कर क्यों निकल सका? दूसरा मेंढक छलांग लगा कर क्यों नहीं निकल सका? दूसरे मेंढक को पानी के गर्म होने का तथ्य तीव्रता से दिखायी न पड़ सका। धीरे-धीरे पानी गर्म हुआ। उसे पानी की गर्मी का एहसास किसी भी क्षण नहीं हो सका।
जो लोग आदर्शों में जीते हैं, वे ल्यूक वार्म, कुनकुने पानी में जीने लगते हैं। उनकी नजर होती है आदर्शों पर। जीवन तथ्यों की पीड़ा और जलन का पूरा अहसास उन्हें कभी नहीं हो पाता। पूरी इंटेसिटी में, पूरी तीव्रता में वे अपनी हिंसा को कभी नहीं देख पाते अहिंसा के कारण। उनके भीतर की हिंसा ल्यूक वार्म मालूम पड़ने लगती है, कुनकुनी मालूम पड़ने लगती है। वे रोज छान कर पानी पी लेते हैं, रात भोजन नहीं करते हैं, मांस नहीं खाते हैं, ऐसे वे अहिंसक हो जाते हैं; भीतर की हिंसा कुनकुनी मालूम पड़ने लगती है। लेकिन अगर वे अहिंसा की इस सारी बातचीत को अलग कर दें और पूरी दृष्टि
से भीतर की हिंसा को देखें, तो जैसे मेंढक छलांग लगा कर बाहर निकल गया, वैसे ही मनुष्य हिंसा के बाहर निकल सकता है। वैसे ही मनुष्य दुख के भी बाहर निकल सकता है। वैसे ही मनुष्य अज्ञान के भी बाहर निकल सकता है। लेकिन हमारे आदर्श, हमारे जीवन को कुनकुना बना देते हैं। और जो आदमी अपने जीवन को जितना आदर्शों से घेर लेता है, उतना ही उसके जीवन में ट्रांसफार्मेशन, वह क्रांति का क्षण कभी भी नहीं आ पाता, जो जीवन को बदल दे और नया कर दे। अस्वस्थ चित्त है आदर्शों के कारण, लेकिन हम तो यही सोचते रहे हैं हजारों वर्षों से कि आदर्शों के कारण ही हम मनुष्य हैं पशु नहीं हैं, फलां नहीं हैं, ढिकां नहीं हैं। आदर्श ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। आदर्श जिसके जीवन में है, वही महान है! आदर्श जिसके जीवन में है, वही नैतिक, वही धार्मिक है। झूठी हैं ये बातें। आदर्श, खुद को धोखा देने की, सेल्फ-डिसेप्शन की तरकीब है, साइंस है। और हजारों साल से आदमी अपने को धोखा दे रहा है।
इस प्रवंचना को तोड़ना जरूरी है। जिस व्यक्ति को भी स्वस्थ चित्त उपलब्ध करना हो, उसे आदर्शों के जाल से मुक्त हो ही जाना चाहिए। फिर हम जीवन के तथ्यों को, जैसे वे हैं देखने में समर्थ हो सकते हैं। फिर हम अपने भीतर उतर सकते हैं और खोज सकते हैं हिंसा को, क्रोध को, घृणा को। स्वास्थ्य तो आधा इससे ही उपलब्ध हो जायेगा, जिस क्षण आपके आदर्शों से चित्त मुक्त हो गया। आप एकदम सरल हो जायेंगे। एक ह्यूमिलिटी, एक विनम्रता आ जायेगी। आदर्श की वजह से एक दंभ आ जाता है। मैं अहिंसक हूं, मैं फला हूं, मैं ढिकां हूं, मैं धार्मिक हूं, ये सब अहंकार के रूप हैं, रोग हैं।
लेकिन जो आदमी सारे आदर्शों को मन से हटा देता है, और मन की तथ्यात्मकता को, वह जो मन है, हिंसा, क्रोध, घृणा से भरा हुआ, ईर्ष्या से भरा हुआ, उसको जानता है, वह एकदम विनम्र हो जाता है। एक ह्यूमिलिटी अचानक उसके ऊपर आ जाती है। वह देखता है, मैं क्या हूं! तथ्य बताते हैं कि मैं क्या हूं। मेरी असलियत क्या है! और जिस दिन वह पूरी शांति से और पूरी सरलता से, पूरी विनम्रता से इन तथ्यों को देखता है, वह देखना ही, वह दर्शन एक छलांग बन जाती है, एक जंप उसके जीवन में आ जाती है, एक क्रांति उसके जीवन में आ जाती है।
कैसे हम उन तथ्यों को देख सकेंगे? अभी मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि आदर्शों के कारण हम नहीं देख पाते हैं। आदर्शोंं के कारण एक भ्रम-जाल, एक इल्युजन पैदा हो जाता है। और हम सब आदर्शोंं में पाले गये हैं और जी रहे

हैं। इससे एक हिपाक्रेसी, एक पाखंड, एक झूठ, एक वंचना खड़ी हो गयी है। और वही झूठ, वही वंचना, वही स्वयं को कुछ और समझना, जो कि हम हैं उससे भिन्न, उससे विरोधी, वही वंचना हमारे जीवन का सारा रोग है।
एक युवक सारी पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकला हुआ था। उस विस्तृत यात्रा में, एक अनजान अपरिचित रास्ते पर एक फकीर से उसका मिलना हो गया। वह फकीर भी अपने गांव को लौटता था। वह युवक जिस देश से आता था, उस देश में सभी लोग सफेद कपड़े पहनते थे। और यह फकीर बड़ा अजीब मालूम पड़ा, यह पूरे ही काले कपड़े पहने हुआ था। उस युवक ने उस फकीर से पूछा कि "आप एकदम काले कपड़े पहने हुए हैं? हमारे देश में तो सभी लोग सफेद कपड़े पहनते हैं!" उस फकीर ने कहाः "सफेद कपड़े पहन सकूं, ऐसा अभी मेरा मन कहां? मन है मेरा काला, इसलिए काले कपड़े पहने हुए हूं!
वह युवक बोला, "तब तो सफेद बिल्कुल ही पहनने चाहिए! और अगर खादी के मिल जायें, तो और भी अच्छा है। क्योंकि काला मन हो, तो सफेद कपड़े में छिप जाता है। और खादी के हों, तब तो सोने में सुगंध आ जाती है!" हमारे मुल्क में तो लोग ऐसी नासमझी कभी नहीं करते कि कोई काला कपड़ा पहनता हो, और काले चित्त का आदमी, कभी ऐसा हो नहीं सकता।
उस फकीर ने कहाः "लेकिन मैं दुखी हूं, मैं वही कपड़े पहनना चाहता हूं,
जो मैं हूं। क्योंकि सफेद कपड़े पहनने से तुम्हें धोखा हो जायेगा, लेकिन मुझे तो धोखा नहीं होगा। मैं जानूंगा, और सफेद कपड़ो के कारण और भी जानूंगा कि भीतर सब काला है!"
उस युवक ने कहाः "किस गांव में आप रहते हैं, मैं वहां जरूर जाना चाहूंगा और संभव है अपनी यात्राओं में वहां से मैं निकलूं, तो मैं आपके दर्शन करने आना चाहूंगा। किस मोहल्ले में आप रहते हैं?" उसने कहाः "तुम पूछ लेना मेरे गांव में आकर कि झूठों की बस्ती कहां है? मैं वहीं रहता हूं!"
"झूठों की बस्ती!" उस युवक ने कहाः "हद्द हो गयी। ऐसा नाम हमने सुना नहीं!" हजारों बस्तियां हैं हमारे देश में, हजारों मोहल्ले, हजारों नगर, हजारों गांव। हमारे यहां तो ऐसा कभी नहीं सुना गया कि कोई झूठों की भी बस्ती हो। हमारे यहां तो जिस मोहल्ले में लोग एक-दूसरे की गर्दन काटने को तैयार रहते हैं उसका नाम "शांतिनगर" रखा है! और जिस मोहल्ले में हर आदमी एक-दूसरे की जेब में हाथ डाले रहता है, उसका नाम "सर्वोदय नगर" रखते हैं। हमारे मुल्क में ऐसा कभी हमने सुना नहीं। आप क्या कहते हैं-"झूठों की बस्ती!" लेकिन उसने कहा, "हां, मेरी बस्ती का तो यही नाम है, आना तो पूछ लेना।" वह युवक लंबी यात्राओं में उस गांव में पहुंचा। उसने गांव में जाकर बहुत लोगों को पूछा कि "झूठों की बस्ती कहां है?" गांव के लोगों ने कहा, "पागल हो गये हो? ऐसे तो सारी दुनिया ही झूठों की बस्ती है, लेकिन नाम कौन रखेगा अपनी बस्ती का-झूठों की बस्ती?" उसने कहा, "एक फकीर था काला कपड़ा पहले हुए... ।" तो किसी ने कहाः "हां, ऐसा एक फकीर है इस गांव में। लेकिन वह झूठों की बस्ती में नही, वह तो मुर्दों की बस्ती में रहता है, मरघट में रहता है। तुम्हें, मालूम होता है कोई भूल हो गयी। उसने कहा होगा मुर्दों की बस्ती। तुम झूठों की बस्ती के ख्याल में आ गये। तुम पूछो, मरघट कहां है? मरघट पर एक फकीर रहता है इस गांव में जो काले कपड़े पहनता है!"
खैर, वह खोजता हुआ मरघट पहुंचा, बात सच निकली। मरघट पर उस फकीर का झोपड़ा था। फकीर के पास जाकर वह अंदर गया, तो देखा, बडी हड्डियां, बड़े सिर खोपड़ियां उस झोपड़ी में चारों तरफ रखी हुई हैं। ढेर लगा हुआ है। और फकीर बीच में बैठा हुआ है। उसने कहाः "आप तो मुझसे कह रह थे कि मैं झूठों की बस्ती में रहता हूं और आप तो यहां मुर्दों की बस्ती में रहते हैं! मुझे बड़ी परेशानी हुई, पूछते-पूछते हैरान हो गया।" उस फकीर ने कहाः "दोनों ही बातें सच हैं। इन मुर्दों की खोज-बीन करने से मुझे इस बस्ती का नाम झूठों की बस्ती रखना पड़ा।"
"कैसी खोज-बीन?"
तुम देखते हो, ये हड्डियां और खोपड़ियां रखी हैं! मैंने ब्राह्मण की खोपड़ी की बहुत खोजबीन की कि पता चल जाये कि शूद्र की खोपड़ी से भिन्न है,

लेकिन कुछ पता नहीं चलता है। मैंने साधु की हड्डियां खोजीं और असाधु की और दोनों में पता लगाया कि कोई फर्क पता चल जाए, पर पता नहीं चलता। और ये सारे लोग जब तक जिंदा थे, तब तक ये बहुत फर्क मानते थे कि मैं यह हूं, तुम वह हो, और मरने पर मैं पाता हूं कि सब मिट्टी साबित हुए! और एक ने भी जिंदगी में यह नहीं कहा कि मैं मिट्टी हूं। इसलिए मैंने इस बस्ती का नाम झूठों की बस्ती रख दिया है। सब झूठे थे, असलियत मिट्टी थी। लेकिन न मालूम क्या-क्या दावे करते थे कि मैं यह हूं, मैं वह हूं। मैं ब्राह्मण हूं, तू शूद्र है। मैं नेता हूं, तू अनुयायी है। मैं गुरु हूं, तू शिष्य है! फलां हैं, ढिकां है। न मालूम क्या-क्या! असलियत एक थी कि सब मिट्टी थे। मरघट पर आकर मुझे यह पता चला इसलिए मैंने इसका नाम झूठों की बस्ती रख लिया। और शायद तुम्हें हैरानी होगी कि मरघट को बस्ती कहना उचित है या नहीं। तो मैंने इसलिए इसका नाम बस्ती रखा है। जिसको तुम बस्ती कहते हो, वहां तो रोज कोई न कोई मरता है और उजाड़ हो जाती है। यहां जो एक दफा बस जाता है, फिर कभी नहीं उजड़ता। इसलिए इसका नाम मैंने बस्ती रख छोड़ा है। और ये सब झूठे थे। मरने से यह पता चल गया।"
हम सब झूठे लोग हैं, और जब तक हम झूठे लोग हैं, तब तक हम अस्वस्थ रहेंगे। हम स्वस्थ नहीं हो सकते। स्वस्थ होने के लिये झूठ से मुक्त होना जरूरी है। उस झूठ से, वह जो हमने अपने व्यक्तित्व के संबंध में सृजन कर रखी है, निर्माण कर रखी है। उस झूठ से मुक्त होना जरूरी है, जो हमने अपने बाबत आदर्शों का जाल खड़ा करके निर्मित कर ली है। और जो इस झूठ से मुक्त नहीं होता, उसका सत्य से कभी कोई संबंध नहीं हो सकता। व्यक्तित्व झूठा हो, तो सत्य से मिलन कैसे होगा? सत्य से मिलने के लिये कम से कम सच्चा व्यक्तित्व तो होना चाहिए, कम से कम सच्चाई तो साफ होनी चाहिए कि मैं क्या हूं!
तो आज की सुबह तो इतना की कहना चाहूंगा कि यह भ्रमजाल जो हमने आदर्शों
का अपने आस-पास खड़ा कर रखा है, उस भ्रमजाल में हम झूठे आदमी हो गये हैं और हमारी दुनिया झूठों की बस्ती हो गयी है। इसको हम देखें। अब सुबह के ध्यान के लिये बैठेंगे।
सुबह के ध्यान के संबंध में दो बातें आपसे कह दूं, फिर हम बैठेंगे। सुबह के इस ध्यान में हम बैठे रहेंगे अपनी जगह शरीर को सीधा रख कर। लेकिन सीधा रखने में कोई तनाव न पड़े। बहुत आहिस्ता से, आराम से, सारे शरीर को भी ढीला छोड़ देना है, ताकि शरीर पर कोई किसी तरह का स्ट्रैन न हो। ऐसे बैठ जाना है, जैसे हम विश्राम कर रहे हैं। फिर बहुत आहिस्ता से, आंख बंद कर लेनी है। वह भी बहुत आहिस्ता से, आंख पर जोर न पड़े कि हमने आंख भींच कर बंद कर ली हो। पलक गिर जाये। फिर क्या करेंगे? फिर कुछ भी नहीं करेंगे... चुपचाप बैठे रहेंगे, जस्ट सिटिंग। कुछ भी नहीं करना है। वह जापान में तो ध्यान के लिये कहते हैं... झा-झेन। और झा-झेन का मतलब होता है... जस्ट सिटिंग, बस खाली बैठ रहना।
एक बहुत बड़ा आश्रम था जापान में और जापान का बादशाह उस आश्रम को देखने गया। कई हजार भिक्षु उस आश्रम में रहते थे। आश्रम का जो प्रधान था भिक्षु, उसने बादशाह को सभी जगहें दिखलाईं जाकर दिखलाया एक-एक झोपड़ा--यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं, यहां अध्ययन करते हैं। बीच में एक विशाल भवन था। राजा बार-बार पूछने लगा, "और वहां क्या करते हैं?" भिक्षु उसकी बात सुन कर चुप रह जाता था। राजा बहुत हैरान हुआ। बाथरूम, पाखाने---- सब बतलाये, लेकिन वह जो विशाल भवन था, वह देखने जैसे लगता था, उसकी वह भिक्षु बात भी नहीं करता था। आखिर राजा के विदा का वक्त आ गया। द्वार पर लौट आया, अभी वह भवन तुम दिखलाया गया था। राजा ने कहा, "या तो मैं पागल हूं या तुम। जिसे मैं देखने आया था, वह भवन तुम दिखलाते नहीं और फिजूल के झोपड़े मुझे दिखलाते फिरे। अब मैं जा रहा हूं। क्या मैं पूछ सकता हूं?"
उस भिक्षु ने कहाः "तुम्हारे इस पूछने के कारण ही मैं बताने में असमर्थ हो गया। वहां हम कुछ नहीं करते। वह हमारा ध्यान का कक्ष है। वहां हम कुछ भी नहीं करते। तुम बार-बार पूछते हो, वहां क्या करते हो? तो मैं वे झोपड़े तुमको बताता रहा, जहां हम कुछ करते हैं। कहीं स्नान करते हैं, कहीं भोजन करते हैं। इस भवन में हम कुछ नहीं करते। तो मैं कैसे बताऊं कि हम वहां

क्या करते हैं! इसलिए मैं ले नहीं गया। समझ गया कि यह करने की भाषा समझता है, न करने की भाषा समझेगा नहीं। इसलिये मैंने उस भवन को छोड़ दिया। वहां हम कुछ भी नहीं करते हैं। वहां तो हम बस बैठ जाते हैं। कुछ भी नहीं करते।" यहां भी हम बैठे जाएंगे। बस कुछ भी नहीं करेंगे। आवाजें सुनाई पड़ेगीं, हवाएं पत्तों को हिलायेंगी, वृक्षों से आवाज होगी, उस आवाज को चुपचाप सुनते रहेंगे... सुनते रहेंगे... सुनते रहेंगे, और सुनते ही सुनते आप पायेंगे कि भीतर एक साइलेंस, एक शांति उत्पन्न होनी शुरू हो जाती है।
अगर हम चुपचाप बैठ कर सिर्फ सुनते ही रहें, जीवन को, जो चारों तरफ न मालूम कितने रूपों में ध्वनियां कर रहा है, तो हम भीतर एकदम शांत होते चले जायेंगे। और वह शांति जैसे-जैसे गहरी होगी, वैसे-वैसे एक नये आयाम का भीतर उदघाटन हो जाता है, एक नई डाइमेन्शन खुलनी शुरू हो जाती है। उसी एक आयाम में कही सत्य है, कहीं परमात्मा है, कहीं जीवन का अनुभव है। उसी द्वार पर चल कर कहीं कुछ है जिसे शब्दों में कहना कठिन है कि क्या है।
थोड़े दूर-दूर बैठेंगे, ताकि कोई किसी को छूता न हो। थोड़े-थोड़े फासले
पर बैठ जायें। दूर दरख्तों के नीचे भी जाकर बैठ सकते हैं, और भी सुखद होगा। आवाज तो मेरी वहां सुनाई पड़ेगी, लेकिन थोड़े फासले पर बैठें, बीच से हट जायें। कोई किसी को छूता हुआ न हो।
बैठ जाइए, कहीं भी बैठ जाइए। कहां बैठते हैं इसका सवाल नहीं है। कैसे बैठते हैं, इसका सवाल है। कहीं भी बैठ जाइए। फिर आहिस्ता से आंख बंद कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें। बिल्कुल विश्राम में बैठ जाएं। आराम कर रहे हैं, कोई काम नहीं है। बिल्कुल शांत और शिथिल बैठ जाएं। देखें... शांत और शिथिल। हवाएं जोर से आने को हैं, वृक्ष हिलेंगे, आवाज होगी, चुपचाप सुनते रहें। सुनते ही सुनते... सुनते ही सुनते भीतर सब शांत होता जाता है। सुनें, मौन सुनें... पक्षियों की आवाज, चुपचाप सुनते रहें और कुछ भी नहीं करना है। बस बैठे हैं, सुन रहे हैं।
सुनते रहें, बैठे रहें और धीरे-धीरे मन शांत होता जाएगा। एक सन्नाटा भीतर गहरा हो जाएंगा। सुनें, बाहर जीवन का जो संगीत है, उसे चुपचाप सुनें। कोई तनाव न रखें, बिल्कुल शिथिल। मन पर कोई भार न रखें। मस्तिष्क खिंचा हुआ न हो, सब ढीला छोड़ दे। सुनें, सुनते-सुनते मन शांत होता जाएगा।
सुनते रहें, बैठे रहें। भीतर कोई चीज शांत होती चली जाएगी। मन शांत हो जाएगा। भीतर देखें, मन शांत होता जा रहा है... बिल्कुल शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... । सुनते जाएं, सुनते रहें... मन शांत होता जा रहा है... मन बिल्कुल शांत हो गया है... मन शांत हो गया है... मन शांत हो गया है... ।
धीरे-धीरे दो-चार गहरे श्वास लें, फिर बहुत धीरे से आंख खोलों। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही शांति बाहर भी है, और अनुभव होगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लेकर आहिस्ता से आंख खोलें।
यह तो हमने प्रयोग के लिए किया। दोपहर में कहीं भी एकांत में चले जाएं, किसी वृक्ष के नीचे अकेले बैठ जाएं और चुपचाप इस प्रयोग को करें।

सुबह की बैठक समाप्त हुई।

पंथ प्रेम को अटपटो
पांचवां प्रवचन

अहंकार का भ्रम

मेरे प्रिय आत्मन्!
कोई दो हजार वर्ष पहले यूनान में एक फकीर था, डायोजनीज। बड़ा अजीब फकीर था। आधी जिंदगी हाथ में एक लालटेन लिए दिन की दोपहरी में घूमा करता था! लोग उससे पूछते कि हाथ में लालटेन क्यों लिए हो, जब कि सूरज आकाश में प्रकाशित है और पृथ्वी रोशनी से भरी है। तो वह कहता कि हाथ में लालटेन लिए इसलिए घूमता हूं ताकि मैं किसी मनुष्य को खोज सकूं। लेकिन भरी दोपहरी में लालटेन लेकर घूमने से भी मुझे कोई मनुष्य नहीं मिला। फिर उसने नगर छोड़ दिया और एक छोटी सी गुफा में एक कुत्ते के साथ निवास करने लगा। एक रात उसका जीवन मैं पढ़ता था। वह किताब बंद करके मैं सो गया और मैंने एक सपना देखा। सपने में मैंने देखा कि डायोजनीज अपनी गुफा में बैठा है अपने कुत्ते
के साथ, और मैं भी उसकी गुफा में मौजूद हूं। मैंने डायोजनीज से पूछा कि मैंने सुना है कि तुम आदमी को खोजते-खोजते थक गये और तुम्हें कोई आदमी नहीं मिला। जमीन पर जो इतने आदमी दिखायी पड़ते हैं, ये क्या हैं? वह डायोजनीज बोलाः वे केवल आदमी की शक्लें हैं, आदमी की आत्माएं नहीं। और मैं ऊब गया हूं। आदमी का साथ मैंने छोड़ दिया और अब मैं इस कुत्ते के साथ रहने लगा हूं! मैंने उससे पूछोः क्या कुत्ते का साथ आदमी के साथ से बेहतर हैं? वह बोलाः हां, कुत्ते में मुझे कोई रोग नहीं दिखाई पड़े, जो आदमी में हैं। और जब कोई किसी आदमी को घृणा से कुत्ता कहने लगता है, तब मुझे क्रोध आ जाता है, क्योंकि कोई कुत्ता इतना बुरा नहीं है, जितना आदमी है। जब कोई कुत्ते से आदमी की तुलना कर देता है, तो मुझे कुत्ते का अपमान मालूम पड़ता है। कुत्ता बहुत अदभुत है और अच्छा है। न तो कुत्तों ने कभी युद्ध किए, न कुत्तों ने बड़ी हिंसा की। न तो कुत्तों ने कोई परिग्रह किया है, न कुत्ते आपस में विभाजित हैं, न उनके समाज और संगठन हैं। कुत्ते बड़े सीधे और सरल हैं। मैं तो बहुत हैरान होने लगा उसकी कुत्ते की प्रशंसा को सुन कर। और उस डायोजनीज ने कहा कि मैं तुमसे यह कहता हूं कि एक वक्त आएगा कि कोई आदमी आदमी का साथ करना पंसद नहीं करेगा। लोग कुत्ते पाल लेंगे और लोग कुत्तों के साथ ही घूमने जाया करेंगे।
मैंने उससे पूछाः कुत्ते में ऐसी क्या खूबी है? लेकिन डायोजनीज तो नहीं बोलाः उसका कुत्ता हंसने लगा। तो मैं और भी घबड़ा गया, क्योंकि हंसना और रोना आदमी के सिवाय और किसी पशु मे नहीं होता। सिर्फ आदमी हंसता है, और कोई जानवर नहीं हंसता। कुत्ते को हंसते देख कर मुझे बहुत परेशानी हुई और मैंने कुत्ते से पूछाः क्या तुम हंसते भी हो? वह कुत्ता बोला कि आदमी के साथ रहते-रहते उसकी कुछ बीमारियां मैं भी सीख गया हूं। न केवल हंसता हूं, बल्कि मैं बातचीत करना भी सीख गया हूं, जो अकेले आदमी की बीमारी है, और किसी पशु की नहीं है। उसे बातचीत करते देख कर अचंभा हुआ और मैंने उससे पूछा कि क्या बात है कि डायोजनीज तुम्हें इतना पसंद करता है? उसने जो मुझसे कहा था, वह मैं आपसे कहना चाहता हूं।
उस कुत्ते ने मुझसे कहाः कुत्ता अकेला प्राणी है, जो आदमी की कमजोरी समझ गया। हम पूंछ हिला देते हैं और आदमी खुश हो जाता है, यह उसकी कमजोरी है। इसलिये डायोजनीज मुझसे खुश है, क्योंकि मैं पूंछ हिलाता हूं। और आदमी कुत्तों से खुश हो जायेगा, क्योंकि आदमी की कमजोरी है कोई, जो कि कुत्ते के पूंछ हिलाने से पूरी हो जाती है। मेरी तो नींद खुल गयी। उस कुत्ते की बातें सुन कर और मैं बहुत सोचता रहा कि यह आदमी की कमजोरी क्या है? और इस आदमी की कमजोरी की खोज में मैं था कि मुझे एक और घटना स्मरण आई।
एक फकीर था नसरुद्दीन। फकीर होने से पहले वह एक छोटे से गांव में एक छोटी सी होटल का मालिक था। एक दिन सुबह-सुबह देश का राजा जंगल में शिकार करने को निकला, भटक गया और उस होटल में आ गया। उसने नसरुद्दीन ने कहा कि अंडे मिल सकेंगे? नसरुद्दीन ने कुछ अंडे उसे और उसके साथियों को दिये। खाने के बाद उस राजा ने पूछा कि कितने दाम हुए? नसरुद्दीन ने कहाः सौ

रुपये। वह राजा हैरान हो गया। उसने कहाः चार-छह अंडों के दाम सौ रुपये? दो- चार पैसे भी इनके दाम नहीं हैं! क्या तुम्हारे इस हिस्से में अंडे इतने कम होते हैं? आर एग्ज सो रेयर हियर? क्या इतने कम अंडे यहां होते हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं महाराज, एग्ज आर नॉट रेयर हियर, बट किंग्ज आर। यहां अंडे तो नहीं होते कम, लेकिन राजा मुश्किल से कभी कोई आता है! उसने सौ रुपये निकाले और दे दिए। नसरुद्दीन की पत्नी बहुत हैरान हुई। उसने कहाः हद कर दी, चार-छह अंडों के सौ रुपये तुमने ले लिए। क्या तरकीब हैं? नसरुद्दीन ने कहाः मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। उसकी औरत ने कहाः मैं समझी नहीं। यह आदमी की कमजोरी क्या बला है? नसरुद्दीन ने कहाः मैं एक कहानी और कहता हूं, शायद तेरी समझ में आ जाए कि आदमी की कमजोरी क्या है। नसरुद्दीन ने कहाः एक बार ऐसा हुआ कि मैं एक बहुत बड़े सम्राट के दरबार में गया। मैंने एक बहुत सस्ती सी पगड़ी पहन रखी थी, लेकिन बहुत रंगीन थी, बहुत चमकदार थी। असल में सस्ती चीजें बहुत रंगीन और बहुत चमकदार होती ही हैं। मैं उस पगड़ी को पहन कर दरबार में गया, तो राजा ने मुझसे पूछा कि यह पगड़ी कितने की है? मैंने कहाः एक हजार स्वर्ण-मुद्राओं की। वह राजा हंसने लगा और उसने कहाः क्या मजाक करते हो? क्या इतनी मंहगी पगड़ी है यह? और तभी वजीर राजा के पास झुका और उसके कान में कहाः इस आदमी से सावधान रहना। यह दो-चार रुपये की पगड़ी भी नहीं मालूम होती। एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं कह रहा है! कोई लुटेरा मालूम होता है। नसरुद्दीन ने कहाः मैं समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। क्योंकि जो लोग राजा को खुद लूटते रहते हैं, दूसरा कोई लूटने आये, तो वे लोग बाधा जरूर देते हैं। वजीर बाधा दे रहा होगा। लेकिन मैं भी कुछ कम होशियार न था। मैंने राजा से कहाः तो मैं जाऊं? मैंने यह पगड़ी एक हजार स्वर्ण-मुद्राओं में खरीदी थी और जिस आदमी की खरीदी थी, उसने मुझसे कहा था, तू घबड़ा मत। इस जमीन पर एक ऐसा राजा भी है, जो इसे पांच हजार स्वर्ण-मुद्राओं में खरीद सकता है। मैं उसी राजा की खोज में निकला हूं, तो मैं लौट जाऊं? तुम वह राजा नहीं मालूम होते! यह दरबार वह दरबार नहीं है, जहां पांच हजार में खरीदी जा सके? मैं जाऊं? वह राजा बोलाः दस हजार स्वर्ण-मुद्राएं इसे दे दो और पगड़ी ले लो।
वह पगड़ी ले ली गयी। वजीर किनारे मेरे पास आया और उसने कहाः तुम बड़े जादूगर मालूम होते हो। क्या कर दिया तुमने? दस रूपये की पगड़ी नहीं है, दस हजार रूपये में खरीद जी गयी! तो मैंने उसके कान में कहाः तुम पगड़ियों के दाम जानते हो, तो मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं।
आदमी की कमजोरी क्या है? अहंकार आदमी की कमजोरी है। और जो जितना ज्यादा अहंकार से भरा है, वह उतना ही कमजोर है। और हम सब अहंकार से भरे हैं। हम सब अहंकार से ठोस भरे हैं। हम इतने ज्यादा अहंकार से भरे हैं कि हम में परमात्मा के प्रवेश की कोई संभावना नहीं है। जो मनुष्य अहंकार से भरा है, वह सत्य को नहीं जान सकेगा। क्योंकि सत्य के लिये चाहिये खाली और शून्य मन। और जो अहंकार से भरा है, वह बिल्कुल भी खाली नहीं है जहां कि परमात्मा की किरणें प्रवेश पा सकें, जहां कि सत्य प्रवेश पा सके और स्थान पा सके। मनुष्य के अहंकार के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।
यह अहंकार क्या है? इस अहंकार से मुक्ति का उपाय क्या है? और जो अहंकार से मुक्त होता है, वही केवल शून्य होता है। और कोई शून्य नहीं हो सकता। शून्य का अर्थ है, अहंकार से शून्य हो जाना। यह हमारा "मैं" क्या है? जीवन भर हम इस "मैं" के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं, इसी मैं के आस-पास जीते हैं। हमारे भवन खड़े होते हैं इसी मैं की रक्षा के लिए। हमारे धन के पहाड़ खड़े होते हैं इसी मैं की रक्षा के लिए। यश और पद की प्रतिष्ठा की दौड़ होती हैं इसी मैं की रक्षा के लिए। और न केवल यह, बल्कि हम त्याग करते हैं, उपवास करते हैं और पूजा करते हैं इस मैं की रक्षा के लिए; और मंदिर खड़े करते हैं इस मैं की रक्षा के लिए।
एक गांव में एक नया मंदिर बनता था। उस गांव में बहुत मंदिर थे, वह मंदिरों का ही गाव था। धीरे-धीरे उस गांव में ऐसी हालत हो गयी कि आदमियों को रहने के लिये मकान नहीं बचे थे। क्योंकि सब मकान भगवान ने घेर लिए। और एक नया मंदिर भी उस गांव में बनता था। पुराने मंदिर में पूजा करने वाले

खोजे नहीं मिलते थे। लेकिन मंदिर बन रहा था, तो मैं बहुत हैरान हुआ। जब पुराने मंदिर खाली पड़े हों, उनमें कोई जाने वाना भी न हो, तो यह नया मंदिर क्यों बनाया जा रहा है? वहां मैं गया और वहां के एक बूढ़े कारीगर से पूछा, जो भगवान की मूर्ति गढ़ रहा था, उससे मैंने पूछा कि "यह मंदिर क्यों बन रहा है! मंदिर तो बहुत हैं इस गांव में, कोई कमी नहीं। नये मंदिर की जरूरत कैसे आ गयी? उस बूढ़े आदमी ने कहाः मैंने जिंदगी में बहुत मंदिर बनाये और बहुत भगवान गढ़े, लेकिन मुझसे किसी ने भी नहीं पूछा। आज तुम पूछने आ गये हो, तो तुम्हें बताये देता हूं मेरे जीवन भर का अनुभव कि मंदिर क्यों बनते हैं।" उसने कहा, "आओ मेरे साथ और पीछे चलो।" बड़ा मंदिर बनता था और बड़े पत्थर खोदे जाते थे, और सबसे आखिर में वह मुझे ले गया और उसने एक पत्थर को दिखा कर कहा कि "इस पत्थर के लिए यह मंदिर बनाया जा रहा है।" मैंने चौंक कर देखा, उस पत्थर पर बनाये जाने वाले आदमी का नाम खोदा जा रहा है। इस पत्थर के लिए यह मंदिर बनाया जा रहा है!
सारे मंदिर भगवानों के मंदिर नहीं हैं, बनानेवाले लोगों के मंदिर हैं। मनुष्य का अहंकार बहुत अद्भूत है। मनुष्य धन भी इकट्ठा करता है उसी के लिये, और धर्म भी। मैं कुछ हो जाऊं, जमीन पर कुछ हो जाऊं। और इस जमीन पर कुछ हो जाऊं तो आगे जो परलोक है वहां भी मैं पीछे न रह जाऊं, वहां भी मैं कुछ हो जाऊं। वहां भी मेरा एक बड़ा मकान हो पुण्य का और धर्म का, और स्वर्ग में भी मैं कुछ रहूं। मैं पीछे न रह जाऊं। मैं किसी से पिछड़ न जाऊं, मेरा आगे होना जरूरी है!
यह जो हमारा मैं है, मोक्ष तक हमारा पीछा करता है। मोक्ष भी इसके लिए
हम खोजते और तलाशते हैं। यह मैं है क्या? एक आदमी तप कर सकता है, और तपश्चर्या मैं के लिये दौड़ है, मैं को भरने की, मैं को पूरा करने की। और जब आदमी थक जाता है और परेशान हो जाता है और पाता है कि यह मैं दुख ही देता है, कोई सुख नहीं लाता है; पीड़ा ही लाता है, कोई आनंद नहीं लाता; तो यह भी हो सकता है कि वह मैं को छोड़ने में लग जाये। और वह कहे, मैं को अब छोड़ दूंगा। मैं को त्याग दूंगा। अहंकार से मुक्त हो जाऊंगा। मैं विनम्र हो जाऊंगा। मैं ह्यूमिलिटी को स्वीकार कर लूंगा। मैं कहूंगा, मैं ना कुछ हूं, मैं कोई भी नहीं। मैं वस्त्र छोड़ दूंगा, नग्न हो जाऊंगा। जंगलों में चला जाऊंगा, भिखारी हो जाऊंगा!
लेकिन कौन हो जायेगा भिखारी? कौन चला जायेगा जंगल में? कौन करेगा त्याग? और जब त्याग किया जायेगाऔर भिखारी हो जायेंगे और जंगल में चले जायेंगे, तब भी मैं तृप्त होगा कि मैंने किया त्याग। मुझसे बड़ा त्यागी और कोई भी नहीं है। और अगर कोई खबर ले आयेगा कि तुमसे भी बड़ा त्यागी पैदा हो गया है, तो ईर्ष्या वापस लौट आयेगी वही ईर्ष्या। अगर मुझ से बड़ा किसी ने मकान बना लिया तो जो आयी थी ईर्ष्या, वही ईर्ष्या वापस लौट आएगी, अगर कोई खबर दे देगा कि तुमसे भी बड़ा महात्मा पैदा हो गया है।
अहंकार बड़ा अद्भूत है, बड़ा अनूठा है। उसके रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं।
और हम छोड़ें या भरें, वह हमेशा मौजूद रहता है।
क्या किया जाये? कैसे इस अहंकार से छुटकारा हो? और इससे छुटकारा न हो,
तो आदमी का दुख से भी छुटकारा नहीं हो सकता है। पीड़ा से भी छुटकारा नहीं हो सकता है। अशांति से भी छुटकारा नहीं हो सकता है। अज्ञान से भी छुटकारा नहीं हो सकता है। सारे अज्ञान, सारे दुख, सारी पीड़ा की जड़ में एक भाव है, और वह मेरे होने का भाव है। इस मैं की रक्षा में निरंतर कोशिश करते रहे हैं और दूसरे के मैं पर हमला करते रहे हैं। क्योंकि सब रक्षा अंत में आक्रमण बन जाती है, सब डिफेंस अटैक बन जाता है।
दुनियां भर की हुकूमतें अपनी सैनिक मिनिस्ट्री को डिफेंस मिनिस्ट्री कहती हैं। अब तक दुनिया में किसी हुकूमत ने अटैक मिनिस्ट्री नहीं बनाई है! लेकिन सारी हुकूमतें हमला करती हैं। और डिफेंस मिनिस्ट्री नाम होता है उनका। वे कहते हैं, सुरक्षा मंत्री। सारी दुनिया के मंत्री युद्ध के, सुरक्षा मंत्री कहलाते हैं और सबसे युद्ध ही पैदा होता है।
यह जो हमारा मैं है, इसकी सुरक्षा के लिए हम जो भी उपाय करते हैं, वह दूसरों पर आक्रमण बन जाता है। बनेगा। सुरक्षा की भावना आक्रमण ले आती है।

चाणक्य ने बहुत पहले कहा था, सुरक्षा का सबसे अच्छा उपाय है आक्रमण। अगर सुरक्षा चाहते हो, तो आक्रमण करो।
यह हमारा मैं है, इसकी हमें रक्षा करनी है। चारों तरफ दुनिया भर का अहंकार हमारे अहंकार पर हमला कर रहा है। दूसरे लोग हमें मिटा देना चाहते हैं। मुझे खड़े होना है, अपने को बचाना है। मैं दूसरों को मिटाऊंगा। अहंकार से हिंसा पैदा होती है। फिर चाहे कोई पानी छानकर पीए और मांस न खाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ सकता है। जहां अहंकार है, वहां हिंसा है। चाहे कोई कुछ भी करे, जहां अहंकार है, वहां हिंसा है। क्योंकि अहंकार आक्रामक है, एग्रेसिव है। वह दूसरे को दबाना चाहता है, तभी वह तृप्त होता है, नहीं तो तृप्त नहीं होता।
मैंने सुना है, मद्रास में एक अग्रेंज मजिस्ट्रेट था। वह अपनी अदालत में एक कुर्सी रखता, खुद के बैठने के लिए। कोई आ जाता, तो वह देख लेता कि किस योग्य आदमी है। अगर केवल आदमी होता और कोई पद-प्रतिष्ठा न होती उसकी तो वह खड़े-खड़े ही निपटा देता उसे। उसे बैठने के लिए कोई कहने की जरूरत न थी। अकेले खाली आदमी को कौन बैठने के लिए कब कहता है! क्या जरूरत है उसको बिठाने की? खाली आदमी खड़ा-खड़ा ही निपटा दिया जाता है। लेकिन उसने पास के कमरे में सात नंबर तक की कुर्सियां बनवा रखी थीं। एक से लेकर सात नंबर की। अगर कोई ऐसा आदमी होता, जिसकी जेब थोड़ी भरी होती, जिसके कपड़े थोड़े अच्छे होते, तो वह कहता, जाओ नंबर एक की कुर्सी उठा लाओ। उसका चपरासी नंबर एक की कुर्सी ले आता। वह एक छोटा सा मोढ़ा था। नंबर दो का बड़ा मोढ़ा था, फिर तीन नंबर की कुर्सी थी। ऐसे सात नंबर की बहुत बढ़ियां कुर्सी थी। आदमियों को देखकर कुर्सी बुलवाता था।
एक दिन एक आदमी आया और उसने सारी व्यवस्था गड़बड़ कर दी। वह देखने से बिल्कुल दरिद्र मालूम होता था। सोचा कि खड़े-खड़े ही निपटा दिया जाए। बूढ़ा आदमी था, वह आकर खड़ा हुआ। खड़े हो कर उसने खीसे से घड़ी निकाली और समय देखा। घड़ी उसकी बड़ी बहुमूल्य मालूम होती है। मजिस्ट्रेट घबड़ाया, उसने कहा चपरासी से कि "जाओ नंबर तीन की कुर्सी लेकर आओ।" चपरासी नंबर तीन की कुर्सी जब तक लाता तब तक उस बूढ़े आदमी ने कहा, "मालूम होता है आप मुझे पहचाने नहीं, मैं फलां गांव का जमींदार हूं।" यह सुनते ही वह मजिस्ट्रेट घबड़ाया और उसने चपरासी जो कुर्सी लिये आ रहा था उससे कहा, "ठहर, नंबर तीन नहीं, नंबर चार की कुर्सी ला।" वह कुर्सी रखने गया। तब तक उस आदमी ने कहाः मालूम होता है आप मुझे अब तक नहीं पहचाने। पिछले महायुद्ध में मैंने सरकार को लाखों रूपयों का दान दिया था। समझ गये?" वह घबड़ाया। उसने उस चपरासी से कहाः ठहर। वह नंबर चार की कुर्सी ले आया था। उसने कहा, "तू नंबर पांच की कुर्सी ला।" उस बूढ़े आदमी ने कहाः अच्छा हो कि आखिरी नंबर की कुर्सी बुला लें, क्योंकि अभी मैं कुछ और बातें बताने को हूं। मैं असल में और कुछ रूपया दान करने आया हूं। सरकार के लिये और कुछ लाख रूपये मैं देना चाहता हूं। आखिरी नंबर की कुर्सी बुला लें। चपरासी बेचारा थक जाता है!" हम आदमी को तौलते हैं कुर्सियों से। मतलब, हम आदमियों को तौलते हैं अहंकार से। जितना बड़ा अहंकार उतनी बड़ी कुर्सी। जितनी बड़ी कुर्सी उतना बड़ा अहंकार। हम दूसरों को जिस भाषा में तौलते हैं, उसी भाषा में हमारी दौड़ भी होगी। हम खुद भी उसी तरफ दौड़ रहे होंगे। हम सारे लोग इसीलिए दौड़ रहे हैं कि कोई और बड़ी कुर्सी, और बड़ी कुर्सी, हम कुछ और ऊपर कुछ और ऊपर खड़े हो जायें। लेकिन कितने ही ऊपर खड़े हो जायें, मौत मिट्टी कर देती है। मौत उसको नीचे ले आती है और एक जमीन पर इकट्ठा बिछा देती है।
एक फकीर था चीन में। एक मरघट से निकल रहा था। च्वांगत्सु उसका नाम था। रात होने को थी, उसकी पैर मरघट पर पड़ी एक खोपड़ी से टकरा गया। उसने खोपड़ी उठा ली और उस खोपड़ी से कहा, "मुझे माफ कर दो।" उसके मित्र बोले, "पागल हो, मरे आदमी से माफी मांगते हो?" च्वांगत्सू ने कहा, "तू नहीं जानता! यह बड़े आदमियों का मरघट है।"
उस गांव में दो मरघट थे-एक छोटे आदमियों का मरघट, एक बड़े आदमियों का मरघट। आदमी अद्भूत है, मरने के बाद भी अपने अहंकार को बचाने की कोशिश करता है। बड़े आदमियों के मरघट अलग होते हैं, छोटे आदमियों के मरघट अलग होते

हैं। मौत जिसको मिट्टी में मिला देती है, वह भी मरने के बाद सामान्य मरघट में दफनाये जाने को राजी नहीं होता। विशेष मनघट चाहिए-खास, अलग। सब सामान्य लोगों के मरघट पर कोई असामान्य आदमी कैसे दफनाया जा सकता है! जिसको मिट्टी में मिल जाना है, जो मर गया, राख हो गया, जिसे जिंदगी ने सफा कर दिया और बहा दिया कि हट जाओ जिंदगी से, वह भी अभी कहता है कि मरने के बाद मुझे फलां-फलां मरघट में दफनाना!
च्वांगत्सु ने कहा, "यह कोई छोटे आदमी की खोपड़ी नहीं है। अगर नाराज हो गया, तो मुश्किल हो जायेगी। यह किसी बड़े आदमी की खोपड़ी है। यह बड़े लोंगों का मरघट है।" उसके मित्र हंसें उन्होंने कहाः नाराज होकर अब यह क्या करेगा, यह आदमी मर गया है।" फिर भी च्वांगत्सु बोलाः अगर जिंदा होता, तो हम माफी मांग लेते। अब हम क्या करें!"
वह उस खोपड़ी को घर उठा लाया। रोज हाथ जोड़ कर उसको नमस्कार करता, रोज उससे माफी मांगता। लोग कहते, "तुम पागल हो गये हो?"
च्वांगत्सू कहता, "पागल मैं नहीं हुआ हूं। कहीं यह आदमी जिंदा होता,
तो मेरी क्या हालत होती! यह तो संयोग की बात है कि यह मर गया था और इसकी खोपड़ी में मेरा पैर लगा। अगर जिंदा में लग जाता तो मेरी क्या हालत होती! इसको सोचता हूं और माफी मांगता हूं। और साथ ही एक दूसरी बात भी है। इस खोपड़ी को देखकर मुझे यह ख्याल बना रहता है कि मेरी खोपड़ी भी कल मरघट में होगी और लोगों की लातें उसमें लगेंगी। तो अगर आज ही मेरी खोपड़ी में लात मार जाये, तो मुझे परेशानी न होगी, क्योंकि जो खोपड़ी आखिर लात खायेगी, उस खोपड़ी को मैं कितने दिन तक बचाऊं और क्यों बचाऊं, किस अर्थ से बचाऊं? तो मुझे यह ख्याल बना रहता है। तो जिस दिन से इस खोपड़ी को लाया हूं, उस दिन से अपनी खोपड़ी का ख्याल ही मिट गया। अब कोई लात मार जाये इस खोपड़ी में, तो मैं सोचता हूं, ठीक है, यह तो होने वाला है। इसमें कौन सी अड़चन है, इसमें क्या कठिनाई है! तो मैं उस लात मारने वाले से पूंछ लूंगा कि कहीं पैर में चोट तो नहीं लग गयी आपके? क्योंकि रही खोपड़ी की बात, यह तो लातें खायेगी। मेरी खोपड़ी बनी, उसके पहले जमीन की मिट्टी थी यह। लाखों लातें इसके ऊपर से निकली होंगी। तब मैं इसको नहीं बचा सका। चार दिन के बाद मैं मर जाऊंगा, यह फिर मिट्टी होगी। फिर लाखों लातें इसके ऊपर से निकलेंगी और इसे मैं नहीं बचा सकूंगा। इस बीच के थोड़े दिनों में बचाना मेरा भ्रम ही हो सकता है।" अहंकार बीच का भ्रम है। जो जिंदगी को पूरा नहीं देख पाता है, उसको यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं कुछ हूं। क्या हूं मैं? इसका तो कोई पता नहीं है हमें, लेकिन मैं कुछ हूं, इसका भ्रम जरूर है। क्या हूं मैं? मैं कौन हूं? इसका तो कोई पता नहीं, लेकिन मैं कुछ हूं, इसका हरेक को दावा है।
किसी को धक्का दे दें, वह आदमी कहेगा, "सम्हल के धक्का देना, जानते नहीं, मैं कौन हूं? खुद भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं, लेकिन दूसरे पर हम दावा करते हैं कि जानते नहीं, मैं कौन हूं? क्या पता है हमें अपने संबंध में? क्या हैं हम? कितनी सामर्थ्य और शक्ति है हमारी? क्या सत्ता है हमारी? लेकिन हम बहुत अद्भूत हैं और हम बड़ी तरकीब से अहंकार के जाल को बुनते हैं और बनाते हैं। श्वास आती है और जाती है। लेकिन हम कहते हैं, मैं श्वास ले रहा हूं, आप अगर श्वास ले रहे हैं, तब तो मौत कभी आ न सकेगी, क्योंकि मौत खड़ी रहेगी, आप श्वास लिए जाना! आप कहना, "हम श्वास लेते जाते हैं!" फिर मौत को वापस लौट जाना पड़ेगा। नहीं, लेकिन हम जानते हैं, जो श्वास बाहर जायेगी, वह अगर भीतर न लौटी तो हम लौटा न सकेंगे। लेकिन फिर भी हम कहते हैं, "मैं श्वास ले रहा हूं।" श्वास आती है, जाती है, यह तो सत्य है, लेकिन "मैं श्वास ले रहा हूं।" यह बिल्कुल असत्य है। लेकिन हम कहते हैं, "मैं श्वास ले रहा हूं।" और इसी भांति जन्मते हैं, लेकिन कहते हैं, "मेरा जन्म दिन!" आपसे पूछा था किसी ने कि आप जन्मता चाहते हैं इस दिन पर या नहीं? किसी ने आपसे पूछा था, किसी ने आपसे सलाह ली थी, आपका निर्णय मांगा था? नहीं आपको पता भी नहीं है। लेकिन कहते हैं, मेरा जन्मदिन!
बड़ी अजीब बातें हैं। कहते हैं, "मैं जवान हो गया।" आप जवान हो गये हैं? कोई बच्चा चाहे कि जवान हो जाऊं, तो जवान हो जायेगा? कहते हैं, "मैं बूढ़ा हो गया।" आप बूढ़े हो गये हैं? अगर आप चाहते कि आप बूढ़े हो जायें, तो आप बूढ़े हो

सकते थे? और अगर आपके हाथ में होता बूढ़ा होना, तो क्या कभी आप बूढ़े हुए होते? कौन होने को राजी होता? जिंदगी में चीजें घटती हैं और हम हर चीज को अपने मैं से जोड़ लेते हैं और सोचते हैं कि मैं, और मैं... । और सारा मैं का संबंध झूठा है।
एक राजमहल के पास पत्थरों का एक ढेर लगा हुआ था। कुछ बच्चे वहां खेलने
को निकले थे। एक बच्चे ने एक पत्थर उठाया और महल की खिड़की की तरफ फेंका। पत्थर ऊपर उठने लगा।
ऊपर उठता हुआ पत्थर फूलकर दुगना वजनी हो गया। जो भी ऊपर उठता है फूलकर दुगना वजनी हो जाता है। वह पत्थर भी दुगना वजनी हो गया। और नीचे पड़े पत्थरों पर उसने हिकारत की नजर से देखा और उसने कहा, "पत्थरो! सब सुस्त और काहिल की तरह नीचे पड़े हो। देखो, मैं आकाश की यात्रा पर जाता हूं। हमेशा मैंने कहा कि तुम जड़बुद्धि हो, हमेशा पड़े रहोगे जमीन पर। होना चाहिए मुझ जैसा, जो आकाश की यात्रा भी करता है!" पत्थर बेचारे, जो नीचे पड़े थे, सांसे दबाकर देखते रह गये होंगे इस उठते हुए पत्थर को, मालूम हुआ होगा कोई महापुरूष का जन्म हो गया हमारे बीच! कोई अवतारी पत्थर पैदा हो गया है, आकाश की तरफ जा रहा है! पत्थरों की कामनायें तो बहुत उठी थीं कि हम भी आकाश की सैर करें। लेकिन नहीं, यह सौभाग्य उन्हें उपलब्ध न हुआ था। आज एक पत्थर ऊपर जा रहा था।
वह पत्थर ऊपर गया। जाकर महल की कांच की खिड़की से टकराया और कांच की खिड़की चकनाचूर हो गयी। वह पत्थर हंसा और कहाः कितनी बार मैंने यह खबर नहीं की, कितनी बार मैंने यह घोषना नहीं की, कि मेरे रास्ते में कोई नहीं आये, नहीं तो चकनाचूर हो जायेगा। फिर भी लोग मेरे रास्ते में आ जाते हैं और चकनाचूर हो जाते हैं। नासमझी ही हद्द हैं!
बात तो झूठ नहीं थी, सच ही थी। पत्थर से चकनाचूर हो गया था कांच। पत्थर
ने कहा, "मैंन कर दिया चकनाचूर। कितनी बार कहा, मेरे बीच में कोई न आये।" फिर वह भीतर गिरा, ईरानी कालीन बिछा था महल में, उस पर जाकर गिरा। उसने कहा, "कैसे अच्छे लोग हैं, इस भवन के मालिक! मालूम होता है, मेरे आने की खबर अखबारों में पहले ही कर दी है। स्वागत में ईरानी कालीन बिछा डाले! भवन सजा हुआ है। कितने भले लोग हैं। फिर आखिर स्वागत करें भी क्यों नहीं। कोई साधारण पत्थर नहीं हूं मैं। आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। स्वागत स्वाभाविक है।"
महल के नौकरों ने आवाज सुनी होगी पत्थर के गिरने की, कांच के टूटने की। वे भागे हुए आये। उन्होंने पत्थर को हाथ में उठाया। वह पत्थर अपने दिल में स्वर्ग का अनुभव करने लगा। उसने सोचा, "कैसे भले लोग हैं। मालूम होता है इस भवन के मालिक ने अपने विशेष प्रतिनिधी भेजे हैं मेरे स्वागत के लिए। राजसी हाथों में मेरा स्वागत किया जा रहा है। कितने भले लोग हैं! कितने प्यारे और अच्छे लोग हैं। फिर आखिर हो भी क्यों नहीं, मैं कोई साधारण पत्थर हूं?"
फिर नौकरों ने उस पत्थर को वापस फेंका। तो उस पत्थर ने कहाः लौट चलें।
घर की बहुत याद आती है। होम सिकनेस मालूम होती है। सारे मित्र पत्थरों की याद आती है, जिनको पीछे छोड़ आया।" जैसे जब कोई दिल्ली से पत्थर वापस लौटता है इंदौर की तरफ, तो कहता है, इंदौर की बहुत याद आती है, अब घर चलें। वैसा ही वह पत्थर भी महल से वापस लौटने लगा भीड़ में नीचे। उसने सोचाः बड़ी याद आती है, अपने मित्रों के पास वापस लौट चलें।
वह पत्थर गिरा नीचे तो नीचे के पत्थर आंखे उठाये देखते थे आते हुए विमान से अपने मित्र को। स्वागत समारोह हुए होंगे, अभिनंदन के समारोह हुए होंगे। उन पत्थरों ने पूछा होगा, हाल-चाल सुनाओ। कहां गये, क्या किया, किन विदेशों की यात्रायों कीं, किन महलों के निवासी बने? उस पत्थर ने कहाः सब सुनाऊंगा। पहली दफा यह भाग्य मिला मुझे। और उसने अपनी सारी कथा सुनायी, कैसे उसने यात्रा की, कैसे शत्रु नष्ट हुए, कैसे राजसी महलों में निवास किया, कैसे शाही हाथों में स्वागत हुआ, वह सब उसने सुनाया। नीचे के पत्थर उससे कहने लगे, तुम अपनी आत्मकथा लिख दो। आटोबायोग्राफी लिख दो। आने वाले बच्चों में काम आयेगी। पीढ़ी दर पीढ़ी सब बच्चे पढ़ेंगे और जानेंगे कि उनके

वंश में, उनके परिवार में कोई हुआ था पत्थर, कोई अवतारी व्यक्ति हो गया था, उसकी कथा वे पढ़ेंगे और खुश होंगे!
वह पत्थर अपनी आत्मकथा लिख रहा है, जरूर कहीं न कहीं से अपनी आत्मकथा छपवा लेगा, क्योंकि उसके पहले बहुत पत्थरों ने अपनी आत्मकथांए छपवा ली हैं। कोई न कोई उसको भी छापने वाला मिल ही जायेगा। वह अभी लिख रहा है।
यह पत्थर जिस भाषा में सोचता है, हम कोई और भाषा में सोचते हैं? हम भी इसी भाषा में सोचते हैं। मेरा जन्म। आपको पता है, क्यों हुआ आपका जन्म? कैसे, कहां से, किस हाथ ने आपके पत्थर को फेंक दिया और आप यात्रा पर निकल गये? पता है कुछ? कुछ भी पता नहीं है। सब निपट अज्ञात और अंधकार में है। लेकिन कहते हैं, मेरा जन्म। कहते हैं, मेरे रास्ते में कोई न आये, नहीं तो टूट जाएगा। मेरी श्वासें, मेरा जीवन! सारे जीवन के तथ्यों को जो पत्थर की यात्रा से ज्यादा नहीं, हम मैं के आस-पास गूथंते चले जाते हैं और मैं को मजबूत करते चले जाते हैं। और यह मैं कष्ट देता है, क्योंकि मैं से ज्यादा असत्य और कुछ भी नहीं है। जो असत्य है, वही दुख का मूल है। जो सत्य है, वह आनंद का स्त्रोत है।
मनुष्य दुख में है, क्योंकि अहंकार में है। और जब तक अहंकार विसर्जित
न हो जाये, आनंद के द्वार नहीं खुल सकते।
अहंकार है दुख मूल, क्योंकि अहंकार असत्य है। है ही नहीं अहंकार।
सिर्फ कल्पना, एकदम झूठी कल्पना है और उसको हम मजबूत किये चले जाते हैं।
फिर कुछ लोग इसको भरने में लग जाते हैं। और कुछ लोग इसको छोड़ने में लग जाते हैं।
मेरी दृष्टि में दोनों गलत हैं क्योंकि जो है ही नहीं, उसको भरा भी नहीं जा सकता और जो है ही नहीं, उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता। होता अहंकार, तो हम छोड़ देते। इसलिए जो आदमी कहता है, मैं तो बिल्कुल विनम्र हूं, उसकी विनम्रता में भी उसके अहंकार की घोषणा छिपी है। जो कहता है, मैं तो ना कुछ हूं, मैं तो आपका सेवक हूं, उसकी भी आंखो में झांकें। वहां कोई कह रहा है कि मैं सब हूं, मैं कुछ हूं। सारी घोषणा चल रही है।
बर्नार्ड शॉ ने एक बार यह घोषणा कर दी थी... । जमीन पर हजारों वर्ष तक आदमी यह सोचता रहा कि जमीन का चक्कर सूरज लगाता है। फिर विज्ञान ने यह पता लगा लिया कि यह भ्रांति है। जमीन का चक्कर सूरज नहीं लगाता, जमीन ही सूरज का चक्कर लगाती है। फिर यह सिद्ध भी हो गया विज्ञान से कि जमीन ही सूरज का चक्कर लगाती है। लेकिन बर्नार्ड शॉ ने इस बीसवीं सदी में यह घोषणा कर दी कि "यह बात गलत है, जमीन सूरज का चक्कर न लगाती है, और न लगा सकती है। सूरज ही जमीन का चक्कर लगा रहा है।" अब बर्नार्ड शॉ कोई वैज्ञानिक नहीं थे। उसके मित्रों ने कहा, "तुम यह क्या पागलपन की बात कहते हो? क्या प्रमाण हैं तुम्हारे पास?" बर्नार्ड शॉ ने कहा, "प्रमाण एक है। बर्नार्ड शॉ जिस जमीन पर रहता है, वह जमीन किसी सूरज का चक्कर नहीं लगा सकती। मैं जमीन पर रहता हूं यहां। सूरज की चक्कर लगायेगा। हम कैसे चक्कर लगा सकते हैं?" बर्नार्ड शॉ ने कहा, "बर्नार्ड शॉ जिस जमीन पर रहता है, वह जमीन कैस चक्कर लगा सकती है सूरज का? बात बिल्कुल गलत है। सूरज ही चक्कर लगाता होगा।"
मजाक में उसने यह बात कही थी, लेकिन आदमी इसी भाषा में सोचता है। सारी जिंदगी इसी भाषा में सोचता है कि सारी दुनिया मेरा चक्कर लगा रही है। चांद-तारे चक्कर लगा रहे हैं, आदमी चक्कर लगा रहे हैं, पशु-पक्षी चक्कर लगा रहे हैं। मेरा चक्कर लगा रहे हैं! और आदमी इतना होशियार है कि थोड़ी-बहुत प्रार्थनाएं कर लेता है मंदिर में, सवा रुपये का प्रसाद चढ़ा आता है। फिर कोशिश करता है, भगवान भी उसका चक्कर लगाएं! उसके बच्चे की बीमारी ठीक करें। उसकी लड़की की शादी करवायें। उसकी नौकरी लगवाएं। भगवान भी उसका चक्कर लगायें। वह सवा रूपया चढ़ा कर आया, उसने पांच-छह दफा भगवान की खुशामद की हे भगवान, तुम बहुत बड़े हो। उसने सब भांति भगवान को समझाने की कोशिश की कि वह भी उसका चक्कर लगायें।
आखिरी कोशिश आदमी यह करता है कि भगवान भी मेरा चक्कर लगाये। अगर उसको पक्का हो जाये कि भगवान मेरा चक्कर न लगायेगा, तो वह मंदिर का चक्कर लगाना फौरन बंद कर देगा। यह म्युचुअल लेन-देन है। हम तुम्हारे मंदिर का चक्कर

लगाते हैं, तुम हमारा लगा लेना! और नहीं लगाओगे तो हम पूजा-पत्री सब बंद कर देंगे। इसकी धमकी भी देता रहता है! भय भी दिखलाता रहता है कि याद रखना, विदा कर देंगे मंदिर से। पूजा-पत्री बंद कर देंगे। यह जो पूजा-पत्री बंद हो गई, वह इसीलिए तो कई लोगों को यह समझ में आ गया कि भगवान हमारा चक्कर नहीं लगाता है। उन्होंने चक्कर लगाना बंद कर दिया है।
आदमी अपने केंद्र पर सारी दुनिया को सोचता है, यही उसका भ्रम है। हम केंद्र नहीं है, हम जीवन के एक भाग है। जैसे समुद्र की लहर समुद्र का एक भाग है, केंद्र नहीं; वैसे ही हम जीवन के एक भाग हैं। जीवन से पृथक हमारी कोई सत्ता नहीं है। जीवन से भिन्न हमारा कोई होना नहीं है। लेकिन लगता है कि मैं हूं। जैसे लहर को लगे कि मैं हूं। और लहर सोचने लगे कि सारी लहरें मेरा चक्कर लगाती हैं। चांद मेरे लिए उठता है, सूरज मेरे लिए उठता है, सागर मेरे लिए है, तो वह लहर जैसी भूल में पड़ जायेगी, वैसी भूल में हम पड़ जाते हैं। क्या है हमारा होना? इसलिए न तो अहंकार को कोई भर सकता है और न कोई छोड़ सकता है। फिर क्या किया जाये! फिर क्या हो सकता है?
तो मैं निवेदन करूंगा, यह अहंकार क्या है? उसके प्रति जागा जाये, इसके प्रति होश से भरा जाये, इसे पहचाना जाये, इसे भीतर खोजा जाये, कहां है यह जो कि कहता है कि मैं हूं! बड़े आश्चर्य की बात है, जिन्होंने खोजा उन्होंने नहीं पाया। वे भीतर गये और उन्होंने देखा, वहां कोई अहंकार नहीं है, वहां कोई मैं नहीं है। वहां जीवन है अनंत, असीम, जिसकी कोई सीमा नहीं है। वहां जीवन है जो सागर की भांति है, अछोर, अनंत। वहां कोई मैं नहीं है।
जो जागता है-भीतर जागता है, देखता है-वह पाता है, अहंकार बिल्कुल भी नहीं है; वहां कोई मैं नहीं हैं। वहां तो परिपूर्ण मौन है, शांति है- मैं नहीं। मैं का उपद्रव, मैं की आवाज वहां नहीं सुनी जाती। तो इसलिए मैं नहीं कहता हूं कि मैं को भरने में जायें। सांसरिक लोग जिन्हें हम कहते हैं, वह मैं को भरने में लगे हैं। जिनको हम संन्यासी कहतें हैं, वे मैं को खाली करने में लगे हैं। दोनों गलती में हैं। मैं तो है ही नहीं। मैं होता, तो भरा जा सकता था। मैं होता, तो छोड़ा जा सकता था। मैं तो एक छाया की भांति है। अगर आप प्रकाश ले जायें, तो छाया नहीं पाई जायेगी और अगर प्रकाश न ले जायें, तो छाया पाई जायेगी। तो भीतर घुसें और देखें, कहां है मैं? खोजें। वह नहीं दिखाई पड़ेगी, नहीं मिलगी।
क्या है रास्ता भीतर प्रवेश का? कैसे आब्जर्व कर सकते हैं, कैसे निरीक्षण कर सकते हैं इस मैं को? कैसे निरीक्षण के द्वारा इससे छुटकारा हो सकता है? क्या है रास्ता? बहुत सरल है रास्ता। एकदम सरल है रास्ता। स्वंय को पाने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है? भीतर प्रवेश से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है कि भीतर हम है; मौजूद हैं। सिर्फ एक जरा-सी झलक और भीतर एक क्रांति हो जाये और सब बदल जाये। लेकिन भीतर जाने का रास्ता क्या है? पूजा-प्रार्थना करें, तो भीतर पहुंच जायेंगे? कभी भी नहीं, क्योंकि सब पूजा बाहर है, सब प्रार्थना बाहर है। जो बाहर है, वह भीतर नहीं ले जा सकेगी। तो क्या करें? शीर्षासन करें, उल्टे खड़े हो जायें, हाथ-पैर हिलायें? क्या करें? आसन-व्यायाम करें? सब आसन-व्यायाम शरीर के बाहर हैं, भीतर नहीं ले जा सकेंगे। सर्कस सीखने हो, तो बात अलग है। लेकिन भीतर जाना हो, तो मामला बिल्कुल दूसरा है। कोई व्यायाम और आसन से नहीं होगा। तो क्या करें? शास्त्र पढ़ें, शास्त्रों को कंठस्थ कर लें? सब शास्त्र बाहर हैं। कितना ही कंठस्थ कर लें, भीतर नहीं जा सकेंगे। क्या करें हिमालय पर चले जायें? हिमालय उतना ही बाहर है, जितना इंदौर। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कहां जायें, क्या करें? एक छोटी-सी घटना कहूं, शायद उससे समझ में आ जाये कि कहां जायें, क्या करें।
जापान के एक गांव में एक छोटी-सी पहाड़ी के पास सुबह सूरज उगा और तीन मित्रा घूमने निकले थे। उन्होंने देखा, पहाड़ी के किनारे पर एक भिक्षु खड़ा है-मौन शांत। उन तीनों ने सोचा, "यह भिक्षु सुबह-सुबह पहाड़ी के किनारे क्या करता होगा?" एक ने कहा, "मुझे ऐसा समझ में पड़ता है कि कभी-कभी उसकी गाय खो जाती है। हो सकता है, गाय खो गई हो और पहाड़ी पर खड़े होकर देखता हो कि जंगल में गाय कहां है?" लेकिन दूसरे ने कहा, "मित्र, तुम्हारी बात पर मुझे

विश्वास नहीं आता। क्योंकि जो आदमी किसी को खोजता है, वह घूम-घूमकर देखता है। यह भिक्षु तो बिल्कुल सीधा-सादा है, इधर-उधर घूमता भी नहीं। यह किसी चीज को खोजता हो, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। मुझे तो ऐसा लगता है, कोई मित्र साथ में घूमने आया होगा और वह पीछे छूट गया। वह प्रतीक्षा कर रहा होगा खड़े होकर कि मित्र आ जाये।" तीसरे व्यक्ति ने कहा, "यह भी मुझे विश्वास नहीं आता। क्योंकि जो किसी की प्रतीक्षा करता है, वह पीछे लौटकर भी कभी देखता है। वह तो पीछे लौटकर कभी देखता ही नहीं। यह तो बिल्कुल खड़ा है चुपचाप। तो मैं तो समझता हूं, यह किसी मित्र की प्रतीक्षा भी नहीं कर रहा, किसी खोई हुई गाय को भी नहीं खोज रहा। यह तो परमात्मा का ध्यान कर रहा है।"
विवाद तेज होता गया, जैसे कि सभी विवाद तेज हो जाते हैं, और निर्णय मुश्किल हो गया जैसे कि किसी भी विवाद से निर्णय कभी भी नहीं हुआ है। अंततः एक ही उपाय रह गया कि वे तीनों जायें और भिक्षु से पूछें कि "तुम यहां क्या करते हो?" उस तीनों ने पहाड़ी चढ़ी। वे उस भिक्षु के पास गये और उनमें से पहले ने पूछा कि "भंते, आप यहां क्या करते हैं?" क्या आपकी गाय खो गयी है? आप उसको खोजते हैं?" उस भिक्षु ने कहा, "कैसी गाय? मेरा तो कुछ भी नहीं है, तो खोयेगा कैसे? जब खोयेगा नहीं, तो खोजूंगा कैसे? मैं कोई गाय नहीं खोज रहा हूं।"
पहला आदमी हार गया। दूसरे आदमी ने कहा, "तब तो निश्चय ही, जरूर ही आपका कोई मित्र साथ आया होगा और पीछे छूट गया, आप उसकी प्रतीक्षा करते हैं!" उस भिक्षु ने कहा, "कैसा मित्र? जिसका कोई शत्रु नहीं, उसका कोई मित्र कैसे होगा? मेरा कोई शत्रु नहीं है, मेरा कोई मित्र नहीं है। और जब है ही नहीं, तो पीछे कैसे छूटेगा? कोई पीछे नहीं छूटा है।"
दूसरा आदमी हार गया। तीसरे आदमी ने कहाः तब तो निश्चय ही जो मैंने कहा, वही सत्य है। आप परमात्मा का स्मरण कर रहे हैं। उस भिक्षु ने कहाः मैंने बहुत खोजा, कोई परमात्मा नहीं पाया। क्योंकि जब तक मैं खोजने वाला मौजूद था, तब तक उसे मैं कैसे पा सकता था! फिर मैं ही खो गया और जब मैं ही खो गया, तो कौन करेगा स्मरण, और किसका करेगा स्मरण? मैं किसी परमात्मा का स्मरण नहीं कर रहा हूं। तीसरा आदमी भी हार गया।
उन तीनों ने पूछा, "फिर आप क्या कर रहे हैं? व्हाट आर यू डूइंग सर? क्या कर रहे हैं आप?" उस आदमी ने कहा, "आई ऐम जस्ट एक्जिस्टिंग, डूइंग नथिंग। मैं तो केवल हूं। इस क्षण मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, मैं केवल हूं। मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। न कुछ खोज रहा हूं, न किसी की प्रतीक्षा कर रहा हूं, न किसी का स्मरण कर रहा हूं। मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं।" समझें थोड़ा इस बात को। जिस क्षण आपका चित्त कुछ भी नहीं करता है, न कुछ खोजता है, न किसी की प्रतीक्षा करता है, न किसी का स्मरण करता है, केवल रह जाता है, केवल होता है, जस्ट एक्झिस्ट्स, उस वक्त क्या होगा? उस वक्त एक क्रांति घटित हो जाती है। उस वक्त ही आप स्वंय को देखने में समर्थ हो पाते है। उस क्षण ही आपको पता चलता है कि अहंकार नहीं है, और जो है वही परमात्मा है।
इतने शांत और मौन क्षण में, इतनी साइलेंस में जहां चित्त कुछ भी नहीं करता हैं, बिल्कुल शांत हो जाता है, जैसे झील; सारी लहरें बंद हो गयी हों, ऐसे शांत क्षण में, ऐसे मौन क्षण में, ऐसे अक्रिया के क्षण में जाना जाता है, देखा जाता है कि अहंकार नहीं है। अहंकार का विस्फोट हो जाता है। और जहां अहंकार नहीं है, वहीं उसके दर्शन हो जाते हैं, जो है। उसे हम आत्मा कहें, परमात्मा कहें, सत्य कहें, या कोई और नाम दे दें। लेकिन जब तक अहंकार भीतर खड़ा है, यह भ्रम खड़ा है कि मैं हूं, तब तक उसे नहीं जाना जा सकता जो है, वस्तुतः है।
जब तक अहंकार का भ्रम है, तब तक सत्य के द्वार नहीं खुले सकते। सत्य के द्वार तो निरंतर खुले हैं, अहंकार का पर्दा उसे रोके है। इसलिये न तो पहाड़ पर जायें, न तीर्थ, न मंदिर, न पूजा, न प्रार्थना, न शास्त्र; कोई कही नहीं ले जा सकेगा। जाये वहां, चित्त की उस दशा में, जहां कोई क्रिया नहीं है, कोई शब्द नहीं है, कोई विचार नहीं है, सब शांत है और मौन है। वहीं-वहीं है

तीर्थ, वहीं है मंदिर, वहीं है पूजा, वहीं है प्रार्थना, वहीं है ध्यान, वहीं है धर्म, और वहीं है वह जिसे हम कहें परमात्मा।
एक छोटी-सी कहानी और आज की चर्चा मैं पूरी करूं। एक महाकवि एक नदी पर अपने बजरे में यात्रा करता था। पूर्णिमा की रात थी, चारों और चांदी बरसती थी चांद की। सब सुंदर और सब मौन था और वह अपने बजरे में, नाव के अपने झोपड़े में बैठा हुआ एक छोटी सी मोमबत्ती जलाये हुए सौंदर्यशास्त्र पर कोई किताब पढ़ता था। सौंदर्य था बाहर मौजूद। चारों तरफ सब कुछ सुंदर था। दूर आकाश के कोनों-कोनों तक सौंदर्य की वर्षा थी। लेकिन वह एक किताब पढ़ता था सौदर्यशास्त्र पर, अपने बजरे में बंद, एक छोटी सी मोमबत्ती को जला कर। धुआं भर गया था मोमबत्ती का बजरे में। पीली-पीली टिमटिमाती रोशनी थी। आंखे थक गयीं, ऊब गयीं, धुएं से भर गयीं। थक गया, आधी रात हो गयी। किताब बंद की, मोमबत्ती फूंक कर बुझायी। बुझाते ही हैरान हो गया, बुझाते ही खड़ा हो गया उतर कर अपने तख्त से और नाचने लगा। उसके मित्र सोये थे दो। उसके नाचने को सुन कर जाग आये और कहा, "क्या हो गया, पागल हो गये हो? आधी रात नाचते हो?" उस महाकवि ने कहा, "आज मैंने सत्य जाना, जीवन में कभी न जाना था। मैं एक छोटी-सी मोमबत्ती को जला कर पढ़ता रहा। मोमबत्ती का प्रकाश जब तक टिमटिमाता रहा धीमा, धुंधियाता, तब तक चांद की रोशनी बाहर रूकी रही, भीतर न आयी। द्वार पर ठहरी रही, खिड़की पर ठहरी रही, भीतर प्रविष्ट न हूई। जैसे ही मैंने मोमबत्ती बुझायी, वह रंध्र-रंध्र से, छिद्र-छिद्र से, द्वार से, सब तरफ से चांद भीतर भर आया। और तब मुझे दिखायी पड़ा, कि एक छोटी सी मोमबत्ती विराट चांद के प्रकाश को बाहर रोक सकती है। और तब मुझे दिखायी पड़ा, कहीं मेरे मैं का यह अहंकार, यह तो कहीं परमात्मा को नहीं रोके हैं! एक छोटी सी मोमबत्ती ही कहीं उस सुरज को तो नहीं रोके हुए है! यह मुझे दिखायी पड़ा और यह भी मुझे दिखायी पड़ा कि मैं कि मैं किताब पढ़ता था, सौंदर्यशास्त्र पर। बजरे के बाहर सौंदर्यशास्त्र चारों तरफ मौजूद था। मैं किताब पढ़ता था, सौंदर्य मौजूद था। मैं उसे किताब में खोजता था, जो चारों तरफ मौजूद था। दो बातें मुझे दिखाई पड़ीं।"
ये दो ही बातें मुझे भी दिखायी पड़ी हैं, जो मैं आपसे कह दूं। जिसे आप शास्त्र में खोज रहे हैं, वह चारों तरफ मौजूद है। और जब तक आंखे शास्त्र में खोजती रहेंगी, तब तक वह नहीं दिखाई पड़ेगा। और दूसरी बात, जब तक अहंकार की मोमबत्ती जल रही है, तब तक वह नहीं दिखाई पड़ेगा। और दूसरी बात, जब तक अहंकार की मोमबत्ती जल रही है, तब तक आप टिमटिमाते, धुएं से भरे प्रकाश में जीयेंगे। वही दुख है। और जब तक वह अहंकार की मोमबत्ती जल रही है, तब तक परमात्मा का प्रकाश उपलब्ध नहीं हो सकता। वह द्वार पर प्रतीक्षा करेगा कि जब आप मोमबत्ती बुझा दो, तो मैं भीतर आ जाऊं। मोमबत्ती का बुझाना, उसके लिये आमंत्रण है कि "आ जाओ द्वार खुले हैं। अहंकार को मिटाना उसके लिए आमंत्रण है कि आओ, तुम्हें मैंने पुकारा, तुम आ जाओ।" और जो अहंकार की मोमबत्ती को बुझा देता है, वह बुझाते ही परमात्मा के प्रकाश को उपलब्ध हो जाता है। अहंकार से जो शून्य है, वह परमात्मा से पूर्ण हो जाता है। अहंकार से जो पूर्ण है, वह परमात्मा से शून्य रह जाता है। वर्षा होती है, आकाश से पानी गिरता है। गड्ढे जो खाली होते हैं, वे भर जाते हैं। टीले जो भरे होते हैं, वे खाली रह जाते हैं। परमात्मा चौबीस घंटे बरस रहा है--पल-पल प्रतिपल। जो खाली हैं, वे भर जायेंगे; जो भरे हैं, वे खाली रह जाएंगे।
शून्य हो जाएं अहंकार से, तभी जीवन में धर्म का जन्म होता है। शून्य
हो जायें स्वंय से तभी वह जो स्वंय का वास्तविक सत्य है उदघटित होता है। परमात्मा करे, आपको शून्य कर दे, ताकि आप पूर्ण को पा सकें। यही प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और इतनी शांति से सुना, उससे अत्यंत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।